मूल्य : पच्चीस रुपये

प्रथम संस्करण : 1987

प्रकाशक : श्याम प्रकाशन
फिल्म कालोनी, जयपुर-302 003

मुद्रक : कमल प्रिंटर्स
9/5866, गांधीनगर, दिल्ली-110 031

कोटि-कोटि संस्कृतिनिष्ठ
पाठक-बन्धुओं को
सस्नेह सादर
समर्पित…।

दो शब्द

मेरे प्रथम उपन्यास 'और सूरज ढल गया' की सर्वत्र चर्चा, चिंतन एवं सफलता आपके स्नेह और अपनत्व का ही परिणाम थी। वस्तुतः लेखक समाज से उठता है और समाज को दिशा दिखाता है। जरा अपने करीब देखिये और राज्य प्रशासन से उसकी तुलना कीजिये। निश्चित ही आपको ज्ञात होगा कि हमारा आधार-स्तंभ कैसा है, किस पर टिका है और हम किस दिशा की ओर बढ़ रहे हैं? सच, साहित्यकार इसे ही अपनी लेखनी से सृजित कर समाज के समक्ष रखकर अपने कर्तव्यकर्म का निर्वाह करता है, अस्तु, साहित्य समाज का दर्शन है।

प्रथम कृति के बाद, फिर पांच साल का अन्तराल···। साहित्य सृजन सम्यक व स्वतन्त्र दृष्टि से परन्तु हौले-हौले आगे बढ़ता रहा। और हां, अब देखिये—द्वितीय उपन्यास मेरे माउन्ट-आबू प्रवास के दौरान पूर्ण हो गया, 'ज्योत्सना' जो आपके हाथ मे है।

उपन्यास की कथावस्तु नारी जीवन दर्शन के बहुआयामी चरित्र से काम-क्रीड़ा और यौन कुंठाओं के हेय दृष्टिकोण को चरम-मीमांसा पर पहुंचाकर, उसके निन्दनीय कृत्य से विकृत प्रतिफल को भोगने पर मजबूर कर देती है। यही 'ज्योत्सना' का जीवंत विषय है जो विषय-विकारों से भरा है। क्या जीवन का दर्शन काम-क्रन्दन से कहीं ज्यादा नैतिक आचरण पर टिका है? जी हां, यही सत्य है।

इस कृति को योग्य समीक्षक डा० दुर्गाप्रसाद अग्रवाल का मार्ग-दर्शन प्राप्त हुआ है। जिसके लिए मैं उनका ऋणी हूं। व्यक्ति पूर्ण नहीं होता। अतः सम्भव है, कोई त्रुटि रह गयी हो। यदि आप मेरा ध्यान आकर्षित करेंगे तो मेरी लेखनी को उत्कृष्ट की ओर बढ़ने का बल मिलेगा।

इसी आशा एवं विश्वास के साथ!

सदैव आपका
पुरुषोत्तम 'पोमल'

मल महल, सिन्धी कालोनी, गुरुद्वारा,
-343001

कामज्योत्सना के बंगले के बाहर प्रकाश की सतरंगी आभा तेज हवा के झोंकों में झूमने का भ्रम उत्पन्न कर रही थी। सामने धरी सेनाइट-टेबिल पर दो-तीन संभ्रान्त फाइलों के पन्ने हवा में फड़फड़ा रहे थे। बंगले के पास खड़े कैक्टस के पेड़ों के सिरों से धूप भी खिसककर सो चुकी थी। अपने नीड़ों में लौटते हुए पक्षियों का कलरव रात्रि के आगमन की सूचना दे रहा था।

वैभव कुछ हिचक और कुछ लापरवाही से आगे बढ़ा था। एक बार उसके मन में आया कि यहीं से लौटकर सन्यास धारण कर ले, अभी कुछ नहीं बिगड़ा, ना करने में लौट जाना ज्यादा बेहतर था। फिर वरुण के शब्द उसके मानस-पटल पर अंकित हो आये, 'मम्मीजी ने सब बातें तय कर ली हैं, तू ना मत कहना वैभव, यही सामान्य-सा ट्यूशन तुम्हारे लिए निकट भविष्य में वैभवशाली सिद्ध होगा। कामज्योत्सना जी इस समय राज्य मन्त्रि-मंडल की सबसे चमत्कारिणी देविका हैं।'

वैभव फिर उसी लॉन में चहलकदमी करने लगा था।

टेबिल पर तीन-चार हेयर पिनें और एक लिपस्टिक सुर्ख़ी पड़ी थी। फाइल के पन्ने अभी भी फड़फड़ा रहे थे। सामने दिखायी दे रही पुलिस-चौकी के घंटे ने रात के आठ बजाये थे पर जिस महामहिमाशालिनी मन्त्री महोदया ने उसे सात बजे मिलने का समय दिया था, वह कहीं नहीं थी।

वहाँ थी लोगों की भीड़। रंगीन साड़ी में लिपटी युवतियों का झुंड, और था सफेद खद्दर की टोपियों का समूह। लगता था सब मन्त्री महोदया के मिलने वाले हैं। उफ इतनी भीड़! सतयुगी देवी माँ के मंदिर में भी नहीं होगी।

पुरुष वर्ग से महिला वर्ग संख्या में अधिक था। महिला वर्ग में काना-

फूसी हो रही थी वही पुरुष वर्ग में कोई अपने दाहिने हाथ की तर्जनी से बायें हाथ की हथेली पर पड़े जर्दे को मसल रहा था तो कोई टोपी उतार कर अपनी टांट को खुजला रहा था। तभी एक बालकटी होठों को रंगे बटुआ झलाती आधुनिक महिला संभ्रान्त होने का स्वांग रचती साड़ी का पल्ला कमर पर लपेट कसती हुई उसकी ओर बढ़ आयी, 'क्यों भाई साहब ! कब तक मिलेंगी मंत्री महोदया ? कोई कह रहा था विश्वविद्यालय तरणताल गई हैं महिलाओं की प्रतियोगिता है।'

'हो सकता है।' वैभव का संक्षिप्त जवाब महिला को असंयत बना गया। वह बोल पड़ी थी, 'क्या कहा, हो सकता है ! अजी महाशय, वे समय की पाबंद है। क्या मजाल है कि दो क्षण भी विलंब हो जाये। देखते नहीं समाज-सेविकाएं उनका इंतजार कर रही हैं। वे कहीं अन्दर ही तो विश्राम नहीं कर रहीं ?'

इस बार भी वैभव ने वही रूखा जवाब दिया, 'हो सकता है।'

'क्या खाक हो सकता है।' वो आधुनिका सम्बी-सी गाली देते हुए मुड़ गयी, 'तुम यहां झक मारने आये हो ?'

'जी नहीं, सुनिये मैडम, आपकी महिमाशालिनी मंत्री महोदया ने मुझे बुलवाया था सो मिलने आया हूं।'

चलते-चलते ही मोटी कमर का अस्वाभाविक परिहास कर लचक लेते हुए वह कहने लगी, 'तुम जैसे हजारों उसके आगे-पीछे एड़ियां रगड़ते हैं। हां मंत्री महोदया ऐरे-गैरे नत्थूखैरे से बात नहीं करतीं। भला इसी में है, फूट पड़ो यहां से।' फिर वह मन-ही-मन बड़बड़ाती गालियां देती चली गयी थी।

तब उस अभद्र आधुनिका को आग-बबूला होकर जाते देख वैभव मन-ही-मन मुस्कराये बिना नहीं रह पाया। फिर वह खुले लॉन में टहलने लग गया था।

समय का चक्र अपनी धुरी पर गतिशील था। पर प्रदेश की वरिष्ठ वैभवशालिनी मंत्री महोदया के बारे में किसी को कोई सुनिश्चित खबर नहीं थी। बहरहाल कानाफूसी चल रही थी।

धोती और फेंटा बांधे ग्रामीण पुरुषों का एक लघु झुंड मुख्य फाटक को

लांघ विद्युत-पोल के निकट आकर नारेबाजी करने लग गया, 'किसानों की हितकारिणी मंत्री महोदया जिंदाबाद, जिंदाबाद।' फिर नाना प्रकार के नारों की गूंजन मंत्री महोदया की इमारत से टकराकर लौट आ रही थी।

उफ, वह किस शोर-गुल में आकर फंस गया, मन में कसैलापन आ गया था, लौट जाने का वह निश्चय कर ही रहा था कि चेहरे पर चेचक के विभिन्न दागों से सुसज्जित पूर्ण श्याम वर्णीय एक नाटा-सा व्यक्ति इधर-उधर घूरता हुआ वैभव के पास आकर खड़ा हो गया—'क्षमा कीजियेगा। मैं मंत्री महोदया का पी० ए० हूं। कोई विशेष काम है आपको।'

'जी नहीं, मुझे उन्होंने बुलवाया था।' क्षणभर के लिए विस्मय दृष्टि से उसने वैभव को देखा फिर एकाएक जैसे उसकी स्मृति में वह अंकित हो आया हो।

'कहीं आपका नाम वैभव तो नहीं।'

'जी हां, मैं ही वैभव हूं।'

'अच्छा-अच्छा, बहुत अच्छा। फिर आप यहां क्यों खड़े हैं? आइये-आइये, मंत्री महोदया तो कब से आपका इंतजार कर रही हैं।' वैभव बिना कुछ कहे उसके साथ-साथ चलने लगा था। एक बार फिर ट्यूशन ग्रहण नहीं करने की निराशावादी प्रवृत्ति उसके मानसपटल को झकझोर गयी थी। क्यों आ गया यहां? कैसा अजीब घुटा-घुटा वातावरण है। भीड़ निरंतर बढ़ती आ रही है। लग रहा है रात्रि-विश्राम कैसे नसीब हो पाता होगा मंत्री महोदया को।

देखते-ही-देखते कितनी ही रंगबिरंगी कारें, वर्दीधारी पुलिस अधिकारी महिलाएं बरामदा घेरकर खड़ी हो गयी थी।

कितनी झकाझक श्वेत बगुले के पंख-सी स्वच्छ साड़ियां थीं। कितने लिपस्टिक से रंगे होंठ-चेहरे पर खोखली शृंगार की परत में छिपी कुटिल श्यामा वृत्तियां!

पी० ए० उसे एक सुदीर्घ, टेढ़ीमेढ़ी सकरी गैलरी से ले जाता हुआ अनर्गल बोलता चला जा रहा था, 'वास्तव में आज पूरे दिन ही मंत्री महोदया का सुनिश्चित कार्यक्रम रहा, और फिर अभी-अभी समाज-सेविकाओं से ग्रामीण विकास और पार्टी के अगले चुनावों के संदर्भ में वार्ता की जाने

वाली है। उधर रात्रि दस बजे यूनिवर्सिटी तरण-ताल जाना है। अरे हां, उससे पहले नौ बजे एन० आर० ई० पी० के अन्तर्गत निर्मित सामुदायिक सभा-भवन का उद्घाटन करने अनुसूचित नगर जाना है। परन्तु भाई वैभव, सब बेकार, दिल्ली से मैसेज आया है तुरन्त चली आओ। आपसे मिलना जरूरी था इसी से कहने लगी यही बुला लो—जूड़ा बंधवा रही है। वैसे भी खास मिलने वालों को वहीं बुलवाती हैं। आप एक सैकंड यहां रुकें मैं खबर कर आऊं।'

वैभव वहीं खड़ा रह गया, उसका अन्तर्मन समुद्र की लहरों में अकस्मात आये तूफान-सा हो आया था।

'आइये' पी० ए० पर्दा उठाकर उदासीनता की गंभीर मुद्रा में खड़ा हो गया।

हल्के-हल्के रेशमी पर्दों से प्रशस्त कमरा खस की भीनी सुगंध से शीत था। एक टांग को घुमाकर कुर्सी में श्वेत बगुला-सी बैठी जिस वैभव-शालिनी महिला के व्यस्त जीवन की ध्वस्त भूमिका वह मार्ग भर सुनता आया था, उसे देखकर वह ठिठककर खड़ा रह गया।

'आइये-आइये मिस्टर वैभव, बैठिये।' करों को फैला सम्मिलित कर वह महिमामयी जिस शालीनता से नम्र हो गयी, उसके लिये वैभव प्रस्तुत नहीं था।

अपरिपक्व-सा वह प्रतिउत्तर दिये बिना ही खड़ा रह गया। 'बैठ जाइये प्लीज।'

दुबारा आग्रह पर हड़बड़ाया वह और धम्म से हाथ जोड़कर वह बैठ गया था।

गौरवर्णीय चेहरे को हल्के मायोपिक मेकअप ने और भी सुन्दर बना दिया था। चौड़ा ललाट, तीखी मुड़ी नासिका, हल्के ताम्बूल रंजित अधर और तीखे नयनों की तीव्र अनुसंधानी दृष्टि और थी मांस की अनावश्यक पर्तों से मुक्त भेद-हीन छटे छरहरे बदन की रक्षिता, देखकर लगता था बीस-बाईस वर्ष की कोई कुमारी सामने बैठी है। किन्तु कजरारी आंखों के नीचे गहन चिंतन की श्यामला झाईं स्पष्ट उभरी थी।

वह मुस्करायी और रूपाली के मोती के से दांतों की उजली झलक मैं

उसकी वयस्क की मरीचिका ने वैभव को फिर कठिन कर दिया था।

क्या इसी महिला के किशोर पुत्र को पढ़ाने उसे यहां बुलाया गया। क्या इनका इतना बड़ा पुत्र हो सकता है? मां की परिभाषा में वह कहां खरी उतरती थी?

'वैभव! हां, नाम तो आपका बड़ा आकर्षक है। ऐसे नाम तो बहुत कम मिलते हैं। आप नलोद गुजरात के निवासी हैं, मैं भी वहीं की थी—कामना। पर अब हूं इस प्रदेश की वरिष्ठ महिला मंत्री—कामज्योत्सना! क्यों ठीक है न?' वह फिर मुस्कराई किन्तु लगा वह स्वाभिमान की सीमा साथ अपनी उच्च स्थिति का बयान कर हंसी हो। पहली मुस्कराहट से दूसरी मुस्कान कितनी भिन्न थी? पहली मुस्कान थी दूसरी हंसी।

'जी।' वैभव का संक्षिप्त प्रतिउत्तर कामज्योत्सना को कामनारहित लगा तो आंखों पर चढ़ा बड़ा चश्मा उतारकर उसने वैभव का स्वच्छ शांत चेहरा एक बार फिर अनुसंधानी दृष्टि से निहारा, तब वह उसे पल-प्रतिपल देखती ही रह गयी थी। कितनी सौम्यता, कितना तेज था वैभव के मुखमंडल पर। उसे लगा चेहरे पर मासूमियत की लघुत्तर पतली पर्त चढ़ी है। अलसाये नेत्र—बिम्बों की उदासीनता में रक्तिमा, ऊपर व नीचे के क्रमशः पतले व मोटे होंठों का अद्वितीय मिश्रण और तीखी नासिका का अप्रत्यक्ष प्रहार मंत्री महोदया को असह्य कर गया, यह तेज नारी को आकर्षित करने वाला था या समर्पिता!

'आपके माता-पिता क्या करते हैं?' मंत्री महोदया के प्रश्न का प्रत्येक अक्षर जैसे वैभव के चेहरे पर मुद्रित होने के लिये ही उसके अधरों से निकल रहा था।

'जी, मेरे पिता चित्रकार थे, मां गृहिणी।' कहने के साथ ही उसके नयन-बिम्ब नमीयुक्त हो आये। अर्द्ध माह पूर्व यह प्रश्न पूछा जाता तो उत्तर यह नहीं होता। पिता के लिए तब क्या वैभव भूतकाल का प्रयोग करता? और मां के लिए! वह न पहले भूत या वर्तमान का प्रयोग कर सकता था और न ही अब। किन्तु वह कितना बड़ा झूठ बोला था, मां गृहिणी होती तो पिता की मौत असामयिक नहीं हो पाती और वह इस अवांछित प्रश्न-उत्तर के लिए यहां आता ही क्यों?

'ओह ! तभी, यही मैं सोच रही थी कि तुम्हारा चेहरा किसी महान चित्रकार की ही देन है मिस्टर वैभव। कभी यामिनी राय और इटालियन चित्रकार पराएंजिलको मेरे भी प्रिय चित्रकार थे। उनकी महान वैभव-शाली चित्रकारी में दर्द का अनोखा मिश्रण था। जरा देखो तो उस चित्र को—लाख लाख घोड़ों को मालकिन मल्लिका निर्वस्त्र हो क्या खोज रही है ? एक तरफ नर कंकाल पड़ा है तो दूसरी ओर टंगी है पुरुष की खाल।'

वैभव की दृष्टि उस अनोखे इटालियन चित्रकार की दिव्य अदाकारी में विलीन हो गयी। कैसा मूल आह्वान था इस चित्र में ! वैभव की सारी हिचक दूर हो गई। उस भोली निष्कलंक कुमारी की सी जिज्ञासा ने उसकी सारी घबराहट दूर कर दी थी।

'छोड़िये उसे। हां, आप जा सकते हैं मिस्टर वैभव, आपका चेहरा ही आपका परिचय दे गया है। आप निश्चय ही मेरे पुत्र के सुयोग्य शिक्षक सिद्ध होंगे। मैं बहुत व्यस्त रहती हूं, अभी-अभी मैसेज मिला है दिल्ली पहुंचो सो जा रही हूं। यही भीड़, यही राजनैतिक घटनाचक्र ! आप सुनिश्चित होकर मेरे पुत्र का ज्ञानवर्धन करें। आप जायें मिस्टर वैभव, मेरे पी० ए० आपको चक्र से मिला देंगे। समय भी आप उससे मिलकर स्वयं ही निश्चित कर लें। अच्छा, धन्यवाद।'

क्षणभर पूर्व अनोखी चित्रकारिता की रंगीन रेखाओं में स्वयं ही दर्द का अहसास करती हुई मंत्री महोदया सहसा उदास हो गयी थीं। वह खड़ी हुईं तो उनके व्यक्तित्व का प्रखर तेज वैभव को कठोर अनुशासित लगा। वैभव ने इस बार हाथ जोड़कर विदा ली तब मंत्री महोदया की कठोर वाणी की गर्जना स्पष्ट हुई थी।

'नारायण, इन्हें चक्र से मिला दो और जिस समय भी ये पढ़ाने आयें इन्हें लाने और छोड़ने फिलहाल स्टाफ-कार का प्रबंध कर दिया जावे। जब स्कूटर मरम्मत होकर आ जाये तब चाबी इन्हें थमा देना।'

'जी, ठीक है।'

और फिर पी० ए० उसे पास वाले कमरे की ओर ले गया। बरामदे में ही वैभव को इशारा कर वह अंदर चला गया था। चक्र का कमरा उसी बरामदे के संलग्न बायीं ओर था, इसी से उसका संतुलित सुशील स्वर

वैभव के पास तक आ गया।

'जी, ठीक हूं सर।'

'आपके मास्टरजी आये हैं। मम्मी ने कहा है आप इनसे 'मिल लें, इंतजार में हैं।'

'मास्टर क्यों? ये मास्टरजी के जितने कामों में नहीं हैं। ये तो हमारे ट्यूटर अंकल होंगे।' इस बेहद वयोवृद्ध बालक ने कितना सहज उपहास कर दिया था।

कमला लेकर आया, तो वैभव ने 'नमस्ते ट्यूटर अंकल' कह अपने नन्हे हाथों को जोड़ मुस्कराकर वह बैठ गया। सुसंस्कृत संस्कारमय बालक के प्रथम सोपान में वह खरा उतरा था। फिर कब अपने नये शिक्षक को चाय-प्रतिदान किये ही जा रहा था, यह वैभव ने तुरन्त भांप लिया। स्पष्ट था कि सुदृढ़ व्यक्तित्व के युवा नवीन शिक्षक ने बालक को प्रथम दृष्टि में ही प्रभावित कर दिया था।

'तुम कौन-कौन से विषय मुझसे पढ़ना चाहोगे?' वैभव के चेहरे से बालक की आंखें ही नहीं हट पा रही थीं। वह तुरत बोला— सभी।'

'मेरा अभिप्राय था कि तुम कौन से विषय में अपेक्षाकृत कमजोर हो?' वैभव के स्पष्ट प्रश्न ने बुद्धिशाली बालक के विकसित हो रहे आत्म-विश्वास को उसकी मानसिकता से जोड़ दिया था। वह बोला, 'जी, हम किसी विषय में कमजोर नहीं हैं बल्कि हम उत्कृष्ट की ओर बढ़ना चाहते हैं। वैसे हम हिंदी, गणित और चित्रकला में सर्वोच्च अंक प्राप्त करना चाहेंगे।'

वैभव को लगा बालक की अध्ययन में गहन रुचि उसे एक सफल शिक्षक सिद्ध करेगी।

'ठीक है चक्र, मैं परसों से तुम्हें पढ़ाने आऊंगा, शाम को सात बजे। ठीक है न?'

'जी हां। वैसे सर्वप्रथम आप क्या पढ़ाना चाहेंगे?'

'चित्रकला। रंगतूलिका व इंस्ट्रूमेंट बाक्स तैयार रखना।' वो फिर अपने नवीन छात्र की पीठ थपथपा एक क्षण भी बिना खोये विदा लेकर चला गया था।

चक्र अपने नवीन शिक्षक के सहज व्यक्तित्व से निश्चित प्रभावित हो

गया था। वैभव ने अध्ययन संबंधी चर्चा के अतिरिक्त कोई अनर्गल वार्ता नहीं की थी। यह चक्र के लिए सुखद लेकिन आश्चर्य था।

जिस चक्र को प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों की पत्नियां उठा-उठा-कर दुलारती थीं, उसके बचपने को पीछे धकेल समवयस्क के रूप में स्वीकार कर राज्य उप-सचिव, आर० ए० एस० अधिकारी अपनी गोष्ठियों मे आमंत्रित करते थे। यहां तक कि उसकी माता के पद की गरिमा को स्वीकार कर नन्हें बालक की नट-खट शरारतों को देख-अनदेखा कर उसकी प्रशंसा में अनेक विशेषताओं का अम्बार लगा दिया करते थे। फिर भी वे बालक पर अपना प्रभाव नहीं छोड पाते थे। उसी चक्र को वैभव जैसा साधारण व्यक्ति असाधारण व्यक्तित्व का धनी पूर्ण प्रभावित कर गया था।

चौथे ही दिन फिर नियत समय पर मंत्री महोदया की स्टाफ कार वैभव को लेने आकर खड़ी हो गयी थी। वह पिता को स्मरण कर कर्मशील हो गया था।

सफेद पायजामा व कुर्ता पहने वैभव कार का द्वार खोल उतरा तो मंत्री महोदया पुत्र के साथ स्वयं बरामदे में खडी थी। वह वैभव के स्वागत में बोली, 'तो आप निर्धारित समय पर पहुच ही गये। क्यों वैभव?' वह हंसी और वैभव उसे निहारता रहा। नीति कुशल राजनैतिज्ञ की पहचान अपने बच्चों के सामने कितनी सहज हो जाती है, यह चक्र को उसकी बांहों के घेरे में देख स्वतः ही स्पष्ट हो गया था।

सफेद सिल्क की साड़ी का फूलदार आंचल फहराती, रूखे बालों की ढीली वेनी को अपने रक्तिम कपोलों के स्पर्श से हटाती हुई कामज्योत्सना फिर वैभव को आग्रह से भीतर ले चली, 'मेरा मुन्ना वैसे है तो बुद्धिमान-चक्रवृति, पर कहानियां उपन्यास बहुत पढता है। तुम्हें थोड़ी सख्ती करनी पड़ेगी। क्यों, है न चक्र?'

'मम्मीजी...' बस इतना ही वह पाया था मंत्री महोदया का सुपुत्र, पर कहने का अंदाज मां को झिड़क देने जैसा था। वह वैभव के साथ चलते हुए बोलती जा रही थी, 'बाहर के तो सारे कमरे मिलने वालों से घिरे रहते है यही इस कोठी का एकमात्र एकांत कमरा रह गया है। तुम्हें चक्र को यहीं पढ़ाना पड़ेगा, इसका स्टडी रूम यही है। देखो तो वैभव, ठीक रहेगा

शायद उस विलासिनी रसिका ने मन ही-मन भांप लिया था कि इस टूरिस्ट दल के सदस्य के अतिरिक्त किसी भी विषय में दिलचस्पी नहीं है।

'और कहिये, पी० ए० साहब, बहुत दूर स्थान में रहते हैं आप। यहीं क्यों नहीं चले आते ? आपको भी सुविधा होगी और काम की ओर से हम निश्चिन्त हो जायेंगे। गांधीजी शायद ही कभी-कभार अपने कमरे से बाहर आते हैं, अपाहिज हैं। दोनों पैर कार दुर्घटना में जाते रहे और तो···'

पल भर को खामोश हो गयी वह सौन्दर्यमयी मन्त्री महोदया, फिर उसने बात बढ़ा दी, 'ह्वील चेयर पर ही टहल पाते हैं और मुझे तो देख ही रहे हैं आप, दिन-रात बनआत्मा-सी भटकती रहती हूँ···'

वह फिर मुस्कराई।

कैसी स्नेहमयी मुस्कराहट थी उस वैभवी लोलुप आकर्षक मन्त्री महोदया की ! आज तक वैभव को राजनैतिक दायरे से लिपटी हुई अनेक प्रतिभाओं की सफेद पोश ललक को देखते ही घृणा उत्पन्न हो जाती थी। उसकी दृष्टि में वे श्वेत साड़ी से लिपटी हुई राजनैतिक पतिव्रताएं किसी वेश्यालय से मंदिर जाती हुई खोखली नारी-सी लगती थीं। किंतु इसी सफेद साड़ी के फूलदार आंचल से निकल आयी त्रिवली का आकर्षक छलावा उस प्रतिभाशालिनी इन्दु चेहरे को विलासिता के वैभव में सराबोर कर देता था।

'जब से आपको देखा है···' मन्त्री महोदया का सधा हुआ मधुर कंठ स्वर एक बार फिर किसी रेलवे जंक्शन पर आमने-सामने आती हुई रेल हेतु रेलवे पटरी-सा शंटिंग होता हुआ सुनिश्चित हो गया।'

'चक की स्टडी की सारी चिंता पर अब पूर्णविराम लग गया है···।'

वैभव का एकांतचित्त इस चित्त घोर पूर्ण वातावरण से ऊब-सा गया।

फिर भी मंत्री महोदया के स्वर संगीत को अवाध रूप से सुन रहा था।

'गांधीजी—' कामज्योत्सना अपने पति ब्रह्मदत्त गांधी को गांधीजी कहकर ही पुकारती थी, उसने आज ऐसे विनीत स्वर में पुकारा जैसे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की प्रिय शिष्या मीरा बेन सस्नेह उन्हें बुला रही है।

'मिस्टर वैभव आये हैं, चक्र के नये शिक्षक''', बैठिये मिस्टर वैभव, मैं उन्हें लिवा लाऊं।'

वह उसे विठा, स्वयं सिल्क के पर्दे सरकाकर पति को लिवाने भीतर चली गयी। कमरे में मंत्री पति गांधी की तुरंत उपस्थिति का पूर्वानुमान वैभव को नहीं था।

ह्वील चेयर पर शाल ओढ़े अपने पति ब्रह्मदत्त को वह स्वयं पीठ पीछे से धकेल ले आयी। ऐसा लगा, किसी बड़े हस्पताल की स्टाफ नर्स अपने सधे हाथों से अपाहिज मरीज को ह्वील चेहर पर बिठा आपरेशन थियेटर की ओर धकेल ले आयी हो।

पहियेदार कुर्सी पर बैठे गांधी वैभव को सिर से पांव तक विश्लेषणात्मक दृष्टि से निहारने लगे थे।

उस अपाहिज सुवर्ण दिग्गज मानव का शेविंग किया हुआ मूंछ विहीन सपाट चेहरा, उसी चेहरे पर ढलते हुए यौवन की उभरती हुई झुरियों का शैशव निखर आ जाने के पूर्व भी आकर्षक रहा होगा या नहीं, यह जानना कठिन था। लाल-लाल डोरीदार आंखों मे रहस्यपूर्ण गहन चिंतन की परछाइयां, चौड़े ललाट पर सिंदूर से निकाली गयी पतली लेकिन लम्बी रेखा देख लग रहा था वह चिंतक है। सूखे चिपटे अधरों पर क्षत-विक्षत चित्त में निकल आयी हल्की-सी मुस्कराहट क्षण-भर में ही लुप्त हो गयी।

'अरे, तो तुम हो हमारे चक्र के नये ट्यूटर, पर तुम तो स्वयं विद्यार्थी लग रहे हो, कौन-सी कक्षा मे पढ़ रहे हो तुम ?'

'ऐसा नहीं है गांधीजी, हिन्दी में प्रथम श्रेणी एम० ए० उत्तीर्ण कर अब चित्रकला में डिप्लोमा कर रहे हैं आप। वरुण की मम्मी डॉ० देविका-रानी ने ही मुझे इनका नाम सुझाया था और'''।' मंत्री पति ने मंत्री महोदया की बात बीच ही मे इस तरह काट दी जैसे वह अपनी अर्द्धांगिनी

की मन स्थिति को भांप गये हो, 'ठीक ही तो नाम सुझाया है डॉ॰ देविका रानी ने। स्मार्ट-सुशील-ब्रिलेट कुमार से लगते हैं मिस्टर'''।' वे अकस्मात रुक गये तो वैभव तुरन्त भाप गया कि प्रह्लादत्त गाधी उसका नाम नही जानते हैं।

'जी, वैभव कहते है मुझे।' मत्री पति के तिक्त चेहरे पर निश्चल हसी उभर आयी। कैसी सरल हसी थी उस अपाहिज मत्री पति की। फिर वे बोले, 'वैभव, वाह ! क्या अति उत्तम नाम है तुम्हारा। और हा, तुम्हारी काया का ढाचा भी तुम्हारे नाम-सा ही दिलकश लगता है।'

'जी'''। वैभव तब कुछ नही कह पाया था।

तब से वैभव मत्री-पुत्र चक्र को अपने आपसे जोडने का प्रयास कर रहा था। दो माह के अन्तराल मे ही चक्र अपने ट्यूटर वैभव से इतना हिल-मिल गया कि जब कभी-कभार वैभव उसे पढाने नही आ पाता तो वह किशोर दूसरे दिन ही ढेर सारे प्रश्नो से इतना बाध देता कि प्रश्नो के घेरे से बाहर निकलना वैभव के लिए आसान नही होता और सारे के सारे बहाने व्यर्थ हो जाते थे। और अन्त मे वैभव को सत्य बात कहनी पडती थी, 'कल हमे तीव्र ज्वर था।'

'है ! तब आप आज क्यो आ गये ? आपको तो आराम करना चाहिए। ट्यूटर अक्स, हमे कहलवा दिया होता तो मैं स्वयं डॉक्टर को लेकर आपके घर आ जाता।'

कितना अपनापन था चक्र की भोली बातो मे। यही नही उसने वैभव का हाथ थामकर ज्वर का प्रहार महसूस करते हुए कहा, 'आपको तो अब भी बुखार है। जरा देखू तो कितने सेंटीग्रेड है।' फिर फुरत-फुरत अलमारी खोल वह थर्मामीटर निकाल लाया। थर्मामीटर को झटकते हुए उसने कहा, 'जरा मुह खोलो तो ट्यूटर अक्स्ल।' और वैभव ने तुरन्त मुह खोल ज्वर मापक यत्र को जुबान के नीचे दबा लिया था। कितना सुख मिला था वैभव को तब। और उस उदासीन दृष्टिकोण का भ्रम भी दूर होता गया कि उसका इस ससार मे कोई नही है, वह बेसहारा है। पिता की मृत्यु के बाद अब उसके अन्तर्मन मे विश्वास की एक रेखा उभर आयी थी। और सच, इसे विकसित करने मे मत्री-पुत्र चक्र का कितना सहज हाथ था ! उसकी सरल

स्वाभाविक बातों में वैभव इतना खो जाता कि चक्र के बिना उसका स्वय का दिल नही लगता था। एक तरह से मानसिक लगाव हो गया था उसे, और वह घंटो चक्र की जिज्ञासापूर्ण निश्छल शरारतों में रमता रहता। उसे न अपने घर जाने की जल्दी होती और ना ही उतने चित्र बनाने की, जिससे वह और अधिक अर्थोपार्जन कर सकता था।

ट्यूशन ग्रहण करने से अब तक इन दो माह के भीतर वैभव कभी भी कामज्योत्सना से नही मिल पाया और न स्वय मंत्री महोदया ही वैभव व अपने पुत्र चक्र के अध्ययन दौरान उनके बीच में आयी थी। कभी आमना-सामना हो भी जाता तो वह अपने लावण्ययुक्त चेहरे पर अर्द्ध-सेंटीमीटर मुस्कान बिखेर उसी वेग से निकल जाती जिस गति से वह चला करती।

और उसकी चाल! वह स्वयं राजनैतिक माहौल में इतनी परिपक्व हो गयी थी कि उसका हर कदम एक सुनिश्चित दूरी को ही पार करता था। क्या मजाल कि उसके कदमो की आपसी दूरी में किसी प्रकार का फेर बदल हो। साथ चलते अगरक्षक भी उसके प्रशसक थे। कुल मिलाकर राज-नैतिक चाल-चलन मे वह अपनी कुल-मर्यादा का सदैव ध्यान रखती थी, कौन से परिवेश मे कैसा परिधान पहनना है, इसका पूर्वानुमान उसे सदैव रहता था। कब क्या कहना है और क्या करना है कितना झूठ बोलना है और कितने वादे करने हैं, यह सब उसके मस्तिष्क की अन्तर्शक्ति में कंप्यूटर की भांति फिट रहते थे।

और यही सामान्य से कारण थे जिससे वह अपनी राजनैतिक छवि को निरन्तर आगे की ओर बढ़ाती जा रही थी। आलाकमान की हां में हां मिलाने मे वह माहिर थी तथा राज्य मन्त्रिमडल मे होने वाली तमाम चर्चा-परिचर्चा, आलोचना-समालोचना को दिल्ली तक पहुचाना उसका मुख्य कार्य था। वह राज्य शासन प्रशासन की गुप्त बातें बखूबी इस सफाई से साथ हाई कमान तक पहुचाती थी कि मन्त्रिमडल के अन्य मंत्रियों को इसकी भनक भी नहीं पड़ सकती थी।

हाई कमान कामज्योत्सना की पार्टी के प्रति समर्पित निष्ठा,पूर्ण कार्य पद्धति से प्रसन्न था। वैसे भी हाई कमान का जब किसी राज्य मंत्री पर वरदहस्त होता है तब उसकी राज्य प्रशासन में प्रथम श्रेणी पहुंच हो जाती

है, इसे कामज्योत्सना ने अपने राजनैतिक गुरु से सीख लिया था। इस समय कामज्योत्सना को गृह और राज्य प्रशासन मंत्रालय का कार्य सौंपा गया था लेकिन उसका हस्तक्षेप पूर्ण नियंत्रण सभी विभागों पर असामान्य था।

राज्य मंत्रिमंडल की चमत्कारिणी देवी थी कामज्योत्सना। आम आदमी में अपनी अलग पहचान थी। जब कभी वह ध्वनियन्त्र थाम बोलने लगती, सुनने वालों की बोलती बन्द हो जाती और वे उसी के स्वर में इन्हीं विचारों में बह जाते थे। बिखरी हुई जनता के मतों को अपनी पार्टी के पक्ष में कर उसे अपनी झोली में डलवा लेने में वो माहिर थी। जब बोलती, मानो उसके होंठों से शहद टपक रहा हो। क्या हृदयगत आवाज थी उसकी!

समस्या के परिवेश में वह मूल मुद्दे को इस तरह टाल देती मानो कोई समस्या ही नहीं हो और कभी-कभी इसके विपरीत वह ऐसी-ऐसी समस्याएं खड़ी कर देती जिनका समाधान विपक्षी दलों के पास नहीं होता और अन्त में वह आलाकमान की समाधान रूपी फार्मूला थमा पार्टी के पक्ष में समस्या को सुलझा लेती थी। उसकी सूझ-बूझ असामान्य थी।

कुछ दिनों पूर्व अपने निर्वाचन क्षेत्र में स्वयं का दबदबा कम होता देख उसने रातों-रात अपने चहेतों के माध्यम से आम जनता में यह बात फैला दी कि मुस्लिम समुदाय अपने मुर्दों को गाड़ने के बहाने दिन-ब-दिन सरकारी जमीन को कब्रिस्तान में बदलते जा रहे है।

फिर क्या हुआ! कब्रे जो पहले अपने निर्धारित स्थान पर ही बनायी जाती थी, धीरे-धीरे अतिक्रमण के माध्यम से अन्य स्थान घेरकर बनायी जाने लगी थी। इस पर हिन्दू समुदाय की पंचायत हुई फिर निर्णय हुआ कि मुस्लिम लोगों द्वारा किये जाने वाले अतिक्रमण और फैलते जा रहे कब्रिस्तान को जैसे-तैसे रोका जावे। सिलसिला बढ़ता रहा, हिन्दू-मुस्लिम जाने अनजाने होले-होले टकराते रहे। नफरत बढ़ती रही। और एक ऐसा जुनून उठा कि शहर में दंगा भड़क गया था। पुलिस आयी, कर्फ्यू लगा और चहल-पहल भरे शहर में वीरानी छा गयी।

फिर कर्फ्यू में ढील दी गयी। उत्तेजनाएं कुछ कम हुईं और जिला

प्रशासन द्वारा थोपी गयी शान्ति बनाये रखने [illegible] प्रयास किया जाता रहा। समस्या फिर भी दबी रही थी। प्रशासन शान्त रहा। इसी मौके का फायदा उठा कामर्स्योगमना ने अपने निर्वाचन क्षेत्र का दौरा किया था। दोनों पक्षों के लोगों [illegible] [illegible] दी गयी थी। और सहानुभूतियां जाहिर की गयीं। यहां तक कि कामर्स्योगमना मुसलिम इलाके का दौरा करने गयी तो उसकी वेश-भूषा मुसलिम थी और लोगों की सहानुभूति प्राप्त करने के लिए उसकी अपनी आंखों में आंसू थे।

मंत्री महोदया की जय-जयकार हो गयी। कितनी करुणा है, कितना दुख हुआ है मंत्री महोदया को।

जनता अपनी हमदर्दी भूल गयी। कामर्स्योगमना के दो आंसुओं के गुन गान गाती थी।

हिन्दुओं के साथ भी उतना पूर्ण अपनत्व दिखलाया था और सारा का सारा दोष समाज विरोधी तत्वों एवं विरोधी पार्टी सरक्षण पर डाल दिया था।

'समाजकण्टकों से हमें बचना है, नफरत की खाई को हमें पाटना है, प्रेम और सौहार्द हमें बढ़ाना है। साम्प्रदायिक जहर को खत्म करना है' और अन्त में मंत्री महोदया ने विनती की थी, 'हमारी पार्टी ही एकमात्र पार्टी है जो साम्प्रदायिक सद्भाव बनाये रखने में सक्षम है, समृद्ध है, कृपया अगले चुनाव में वोट हमें ही देवें।'

समस्या खड़ी करना और उसका दोष दूसरे के मत्थे मढ़ देने में वह निपुण थी। यह भाग्य की बात थी कि जनता उसके कहे पर विश्वास कर लेती थी। यही सफलता थी उसके गौरवमय राजनैतिक जीवन की।

कुछ खूबियां भी थीं उसमें। गरीबों की बस्तियों में राज्य का पैसा लगाना, आलाकमन द्वारा संचालित सूत्रीय कार्यक्रम को अपनी पूर्ण क्षमता से संचालित करना और इसी आलाकमान की छवि को बनाये रखना, वह यह सब अपनी स्थिति से ज्यादा अनिवार्य मानती थी। उसके राजनैतिक जीवन में दिल्ली हमेशा उसके पक्ष में रही थी।

प्यार-मोहब्बत-स्नेह के भी चर्चे निराले थे। बच्चों से अपार स्नेह था उसे। वह अपने निर्वाचन क्षेत्र की भाभी मां थी। उसकी ख्याति इसी नाम

में प्रतिष्ठित थी। कभी-कभी भाभीजी का सम्बोधन उसे बुरा भी लग जाता, तो भी विशेष तब जब कोई हम उम्र पुरुष उसे भाभीजी कहकर अपनी ममता का बखान करता। लेकिन उसने कभी इस सम्बोधन पर न नाराजगी जाहिर की थी न ही एतराज की थी। वह अपने मन में आयी सम्बोधन की हीन-भावना को कुछ पल में दबा लेती चूंकि भाभी माँ के नाम से वह विख्यात थी, उसकी पहचान थी अतः वह इस ख्याति को अपने राजनैतिक स्वरूप पर बनाये रखना चाहती थी।

कामज्योत्स्ना यद्यपि अपने राजनैतिक जीवन में जनता के समक्ष साक्षात दैवीय रूप थी लेकिन उसका व्यक्तिगत जीवन ! सच कहा जाय तो वह नितान्त एकाकी था। उसे अपने पति ब्रह्मदत्त गांधी से कोई लगाव नहीं था। औपचारिकताएं मात्र थी पति-पत्नी के दरम्यान। और इसी नाम की शिष्टता को अपाहिज पति ब्रह्मदत्त गांधी झेले रहता था। कामज्योत्सना को छुए उसे कई वर्ष हो गये थे। कभी-कभी लगता मानो वह विधुर का जीवन व्यतीत कर रहा हो।

विधाता ने जिस निष्ठुरता के साथ उसे अपाहिज बनाकर अपनी विवाहिता के समक्ष ला पटका था उसी पलायनवादी दृष्टिकोण को अक्षुण बनाये रखते हुए विवाहिता-पत्नी कामज्योत्सना ने अपने विकलांग पति को पहियेदार कुर्सी पर बिठा हमेशा के लिए उससे कन्नी काट ली थी। तब से पति-पत्नी शारीरिक सुख-सौन्दर्य में विमुख हो गये थे।

ब्रह्मदत्त गांधी के यौन जीवन में कुण्ठाएं समा गयी थी जबकि कामज्योत्सना अपाहिज पुरुष के समक्ष अपनी यौन आकांक्षाओं को पूरा करने में कतराती रही थी।

चौदह वर्ष पूर्व स्वयं ब्रह्मदत्त गांधी जयपुर की विकलांग सोसायटी के मानद अध्यक्ष थे। राजनीति में भी उनकी टांग थी। कहीं-कहीं यह टांग दबदबे में बदल जाती थी। उस समय उसकी उम्र होगी कोई बत्तीस-तैंतीस वर्ष।

एक इत्तफाक ही था जब उसकी मुलाकात कामना से हुई थी। प्रथम दृष्टि में ही उस सोलह-सत्रह वर्षीय सुन्दर कन्या ने उसे आकर्षित कर लिया था। कामना तब अपने पिता कर्नल नितिन मोहन राकेश के साथ उसकी

अपाहिज विकलांग सोसायटी में आयी थी।

सामाजिक सेवाओं के परिप्रेक्ष्य में कर्नल साहब ब्रह्मदत्त गांधी से काफी प्रभावित थे। जब कभी उन्हें अवकाश मिलता तब वे ब्रह्मदत्त गांधी से मिलने अवश्य आते। कारण सहज यह था कि अपाहिजों से उन्हें पूर्ण सहानुभूति थी तथा उनके सम्मान की बातें वे हमेशा सोचा करते थे। भला बाप की आदत बेटी में क्यों नहीं आती? कामना की रुचि भी सामाजिक उत्थान के कार्यों में थी। अतः वे अपनी पुत्री कामना को भी अपने साथ ले आये थे।

'आइये कर्नल साहब, आइये बैठिये!' अपनी कुर्सी से उठते हुए ब्रह्मदत्त गांधी ने कर्नल नितिन मोहन राकेश का स्वागत किया था। कामना भी हाथ जोड़कर पिता के साथ की सीट पर बैठ गयी थी।

'कहिये गांधीजी, कैसे हैं आप?' कर्नल साहब ने हाथ मिलाते हुए पूछा था बदले में ब्रह्मदत्त गांधी ने कामना की ओर निहारकर अपनी दाहिनी हथेली का स्वाभाविक फैलाव करते हुए जवाब दिया था।

'आपकी दुआ से स्वस्थ हूं।' क्षण भर बाद कामना की ओर निहारते हुए ब्रह्मदत्त गांधी ने पूछ ही लिया, 'आप?'

'अरे हम तो भूल ही गये। ये है हमारी बेटी—कामना। और हां बेटी, इन से मिलो। यह हैं विकलांग सोसायटी के अध्यक्ष श्री ब्रह्मदत्त गांधी।' कामना ने फिर एक बार खड़े होकर हाथ जोड़ दिये थे। तब उसने कहां सोचा था कि यही गांधी उसका पति होगा।

प्रथम मिलन में ही ब्रह्मदत्त गांधी उस सत्रह वर्षीया बाला पर रीझ गया था। फिर इधर-उधर की बातें हुई थी।

सोसायटी वेलफेयर फंड की चर्चा के दौरान कामना अपने पिता व ब्रह्मदत्त गांधी के बीच अकस्मात ही बोल पड़ी थी, 'फण्ड बढ़ाने के लिये आप कोई सांस्कृतिक समारोह का आयोजन क्यों नहीं कर लेते। विकलांगों का मनोरंजन होगा और फंड भी आसानी से इकट्ठा हो जायेगा।'

'हां कर्नल साहब, कामनाजी कह तो ठीक ही रही हैं! मैं भी कई दिनों से सोच रहा था कि ऐसा कुछ कर लिया जाये।' ब्रह्मदत्त गांधी ने कामना की सलाह को महत्व देते हुए कुछ क्षण बाद फिर कहा था, 'कामनाजी,

आप सांस्कृतिक समारोह के आयोजन में हमारी किस तरह और क्या मदद कर सकती हैं ?'

'यदि पिताजी आज्ञा दें तो पूरा स्टेज ही सम्भाल सकती हूं।'

'अरे बेटी सामाजिक उत्थान के कार्यों में कैसी रुकावट! मुझे तो खुशी होगी कि कर्नल नितिन मोहन गणेश की पुत्री कामना ने अपाहिजों के उत्थान हेतु कार्य किया।' वे मुस्कराये फिर अपनी बेटी की विशेषताओं का बखान ब्रह्मदत्त गांधी के सामने कर दिया।

'गांधीजी, वैसे कामना नाचती भी अच्छी है और गजल-गायन में तो इसकी सानी नहीं।'

तब से छः माह की निरन्तर मुलाकातों में कामना और ब्रह्मदत्त गांधी का मेल-जोल बढ़ता रहा। इसी मेल-जोल का प्रत्यक्ष परिणाम उन दोनों का प्यार था।

वे दोनों प्यार की सीमा अनायास ही पार कर गये थे। तब कहीं कामना को लगा समाजसेवी ब्रह्मदत्त गांधी ने उसे फांस लिया है। लेकिन तब तक स्वयं की स्थिति में कामना इस योग्य न रही थी कि वह ब्रह्मदत्त गांधी से छुटकारा पा सके। बल्कि हुआ इसके ठीक विपरीत। जब कामना को यह विश्वास हो गया कि उसके गर्भाशय में शुक्राणुओं ने घेराबन्दी कर ली है तब वह अपनी मंजिल से विचलित नहीं हुई थी, न उसने गर्भपात का सोचा और न ही सामाजिक परिप्रेक्ष्य का ध्यान दिया। कामना ने तो तुरन्त ब्रह्मदत्त गांधी से शादी करने का संकल्प कर लिया यद्यपि उसके पिता उसके विरुद्ध थे पर वह स्वयं जिद्दी थी। अपने माता-पिता की इच्छा के विपरीत आनन-फानन में उसने ब्रह्मदत्त गांधी से शादी कर ली थी।

विवाह होना और विवाहित जीवन को जीना अलग बात है। वस्तुतः कामना का जीवन बड़ा नीरस निकला था। पति उस अबोध युवती से उम्र में कहीं बड़ा था। यहीं कोई सोलह वर्ष का अन्तराल होगा उन दोनों की उम्र के दरम्यान। कभी-कभी कामना को महसूस होता उसका पति भाई का भाई हो। उस मासूम नारी के अंग-प्रत्यंग के साथ वह ऐसी-वैसी हरकतें करता कि उसका रोम-रोम दर्द से कराह उठता। काम-विलास के बाद वह अपनी अन्तर्वेदना को कोसती रहती थी।

कामज्योत्सना की ओर देखता ही रह गया था और वह मुंह फेर तुरन्त घर से बाहर निकल गयी थी। यहीं से प्रारम्भ हुई थी पति-पत्नी के बीच दूरियां, तनाव, घुटन और नफरत का सैलाब। ब्रह्मदत्त गांधी जिस शालीनता से विकलांग सोसायटी का कार्य देख रहे थे। वह नम्रता अब उनमें कम होती जा रही थी। पुत्र जन्म के बाद वह अपनी पत्नी के व्यवहार से कुंठित था। शनैः शनैः उनका उदार-चित्त अपने ही मन से विद्रोह करने लगा था। सोसायटी के दफ्तर में बैठे-बैठे वे कामज्योत्सना की मनःस्थिति के बारे में सोचते रहते। क्या हो गया है कामना को? वह उससे उपेक्षित व्यवहार क्यों करने लगी है। अब जबकि राजनीति में भी वह दर्जा हासिल कर चुकी है। निरन्तर उसका व्यवहार हेय होता जा रहा है। वाह! काम-ज्योत्सना की राजनैतिक कामनाएं कितनी बढ़ गयी हैं। शुरू-शुरू में राजनीतिज्ञों से कामज्योत्सना को मिलवाकर कितना बड़ा अपराध किया है। उसकी अंकुरित आकांक्षाओं को मार्ग दिखलाकर ब्रह्मदत्त गांधी ने अपने जीवन में शूलें बिखेर दी थीं।

वे ही उसे राजनैतिक-पैंतरेबाजियों से परिचित करवाते रहे थे। तब उन्होंने कहां सोचा था कि इसी के सहारे सहधर्मिणी राज्य विधान-सभा का टिकट पाकर जीत जायेगी।

लेकिन अब! चुनाव जीत लेने के बाद कामज्योत्सना प्रदेश राजनीति में अपनी स्थिति बनाने के लिए इतना व्यस्त होती जा रही थी कि उसे अपनी गृहस्थी का कोई ख्याल नहीं रहता। पति के प्रति तो उसके मन में कभी समर्पण भाव था ही नहीं। ब्रह्मदत्त गांधी का पति हो जाना काम-ज्योत्सना के लिए एक इत्तफाक ही था, पुत्र चक्र को समय मिलने पर सुबह-शाम थोड़ा-सा प्यार कर पुचकार लेती थी कभी ढेर सारे खिलौने वह ले आती तो कभी नयी-नयी पोशाकें। नन्हां बच्चा इन आवश्यकताओं की ति में मगन रहता था।

अब कभी-कभी ब्रह्मदत्त गांधी को लगता कि उसने कामज्योत्सना को से ही राजनीति में जाने से न रोककर अपनी पत्नी को खो दिया है। जीवन के जिन मधुर क्षणों के लिए उसने कामना को अंगीकार कर विवाह रचाया था, उसका प्रत्यक्ष प्रतिफल चक्र का जन्म था। इसके

अतिरिक्त उसे अपनी विवाहिता में कुछ नहीं मिल पाता था।

अब जबकि वह राजनैतिक उछालें भर रही है उनके लिए ब्रह्मदत्त गांधी का कोई अर्थ नहीं रह गया था। देर-सवेर लौटती, अपने पुत्र को प्यार कर ब्रह्मदत्त गांधी की ओर क्षण भर निहार अपने कमरे में चली जाती, जैसे उसने किसी अनजान व्यक्ति को निहारा हो, अपने पति को नहीं।

ऐसे ही पत्नी के उपेक्षित व्यवहार ब्रह्मदत्त गांधी को शूल की तरह चुभ जाते और वे तीव्र प्रति-निष्क्रियता से पलंग पर औंधे पड़ जाते थे। यही मौन टकराव इन दोनों के दरमियान मूक था। जुबान नहीं थी इन घटनाओं की, लेकिन घटनाएं सामान्य नहीं थीं।

दिन, प्रतिदिन बीतते रहे। महीनों पर महीने चढ़ते रहे, चढ़ते हुए महीनों को तीन वर्षों ने जैसे-तैसे भोगा। कामज्योत्सना का भोग, सभोग और समाधी, सभी राजनैतिक हो गये थे। लगा इसी घटनाक्रम को प्रकृति ने गांधी परिवार के लिए सुनिश्चित कर दिया था। वैसे ब्रह्मदत्त गांधी देर सवेर कामज्योत्सना के करीब आते और उसी की बातों में बतियाने लग जाते थे। बस यही उनका दाम्पत्य सुख था पर इनकी विडम्बना देखिये, नियति ने यह सुख भी ब्रह्मदत्त गांधी से छीन लिया था।

अपनी पत्नी के स्पष्ट निर्देशों के बावजूद ब्रह्मदत्त गांधी कभी कभार बिन बुलाये मेहमान की तरह कामज्योत्सना के राजनीतिक कक्ष में घुस आते थे, इस सामान्य क्रम की एक घड़ी ने उन्हें पत्नी की राजनैतिक-भोक्ता की स्थिति से परिचित करवा दिया। वे सकते में आ गये। मस्तिष्क पर तीव्र प्रहार-सा हुआ और वे आखें मूंदे उल्टे पांव पुनः लौट चले थे।

एक राजनैतिक पुरुष-मित्र उसकी विवाहिता को अपनी बाहों के घेरे में डाले उसके मुख-मंडल को चुंबित किये जा रहा था और कामज्योत्सना विरोध की स्थिति में नहीं थी। वह हाईकमान तक पहुंच का आसान रास्ता बना रही थी। इन रास्तों पर बिखरे हुए कांटों को बिना हाथ लगाये नहीं चुना जा सकता, इसे वह अच्छी तरह जानती थी। और तो और दो-चार कांटे लग जाने की कल्पना से भी उसके मस्तिष्क का कौतूहल इंकार नहीं कर पा रहा था।

प्रह्लादत्त गांधी की पीठ व छाती पर जो काले-काले बालों के नैसर्गिक दरजे उभरे हुए थे, उन्हें देखकर वह इस कदर भयभीत हो जाती कि वह किसी पुरुष को नही बल्कि जगली रीछ के बदन को देख रही हो। फिर उसी देह का बोझ वह जब झेलती तब वह मात्र जिंदा लाश रह जाती थी।

दूसरी ओर चेहरे पर बालों को घास-फूस की तरह उगाने का भी अजीबो-गरीब शौक था प्रह्लादत्त गाधी को। और इसे कामना सह नही पाती थी। वह अपने आपको कंटीले काटों के बीच फंसा हुआ महसूस करती थी। जैसे-तैसे शादी के छ माह बाद उसे पुत्र-रत्न प्राप्त हुआ था। इसी पुत्र का नाम प्रह्लादत्त गाधी के लाख विरोध करने पर भी कामना ने 'चक्र' ही रखा था और स्वय का नाम कामना से बदलकर 'कामज्योत्सना' कर दिया था।

स्वघोषित नाम को प्राप्त कर लेने के पश्चात उसकी सामाजिक और राजनैतिक आकाक्षाएं बढने लगी। जैसे-जैसे चक्र बड़ा होने लगा वैसे-वैसे कामज्योत्सना नारी निकेतन की महिला सचालिका से शासन करने वाली राजनैतिक पार्टी से जुड़ती रही।

तेरह साल के राजनैतिक जीवन मे वह निरंतर ऊचाइयो को पार करती रही थी। उसे दिन-ब-दिन राजनैतिक सफलताए मिलती गयी और वर्तमान मे वह राज्य मत्रिमडल की सशक्त मत्री थी।

लेकिन राजनीति मे वर्तमान स्थिति को बनाये रखने के लिए कई पहाड़ खोदने पडे थे, कई तरह से अपने जीवन की कीमत चुकानी पडी थी। अनेक दुश्मन हो गये थे उसके स्वयं की पार्टी मे भी तथा विरोधी खेमे मे भी, पर दृढ आत्मविश्वास के कारण उसने किसी की परवाह नही की थी।

शुरू-शुरू में प्रह्लादत्त गांधी ने अपनी अर्द्धांगिनी कामना को अपनी विकलाग सोसायटी की गतिविधियों से परिचित करवाया फिर यदा-कदा वह राजनैतिज्ञो से कामज्योत्सना को मिलवाता रहा। यही कारण थे कि कामज्योत्सना की मन स्थिति राजनीति सत्ता से जुड़े रहने की बनी रही। वस्तुतः सत्ता की उत्कठा मानव को मदहोश कर देती है। फिर राजनेताओ से जुड़कर उसने अपने पति की अहमियत को क[illegible] दिया जिससे प्रह्लादत्त गांधी दुखी रहने लगा। पर सत्ता से [illegible] [illegible]मियत ने पति के

जज्बातों को कुचल दिया। ब्रह्मदत्त गांधी नहीं चाहता था कि वो राजनीति में अधिक सक्रिय हो, पर सत्ता की मदहोशी ने कामज्योत्सना की राजनीति की इच्छाओं को अंकुरित किया। इसी का प्रतिफल था कि ब्रह्मदत्त गांधी से धीरे-धीरे कन्नी काटती हुई वह राजनीति में जाने हेतु अधिक सक्रिय होती गयी थी। तब अलौकिक शक्ति ने कामज्योत्सना का साथ दे दिया था, अपने प्रथम प्रयास में ही इसे विधान-सभा निर्वाचन क्षेत्र से, वह भी सत्ता पक्ष की ओर से खड़े होने की अनुमति मिल गयी थी। इससे उसका हौसला बढ़ गया था।

अनेकानेक आश्वासन देकर उसने जनता की सहानुभूति अपने मृदु स्वभाव से अर्जित कर ली।

फिर क्या था मतदान के दिन कामज्योत्सना का पलड़ा भारी रहा। और वह राज्य में सर्वाधिक मतों से विजयी घोषित की गयी। यहीं से उसके राजनीतिक जीवन में उभार आया था।

लेकिन ब्रह्मदत्त गांधी अपनी पत्नी की राजनैतिक महत्त्वाकांक्षाओं की कद्र नहीं कर पा रहा था। वह कामज्योत्सना को अपनी गृहस्थी और पुत्र चक्र का वास्ता दिलाकर राजनीति से अलग कर देना चाहता था लेकिन राजनीति तो एक 'फ्लू' की तरह है जिसका बुखार एक बार लग जाने पर वह आसानी से उतरता नहीं है।

'कामना···।' ब्रह्मदत्त गांधी ने घर की दहलीज से बाहर जाती हुई अपनी अर्द्धांगिनी को रोकते हुए पुकारा था, 'पल भर के लिए इधर आओ कामना।'

कामज्योत्सना ने फूलदार साड़ी पहन रखी थी। अपने आंचल को कमर पर लपेटते हुए वह ब्रह्मदत्त गांधी के पास चली आयी, 'कहिये।'

'कहां जा रही थी तुम?' पति का प्रश्न कामज्योत्सना को ऐसे चुभा जैसे वह उसे बाहर जाने से रोक रहा हो। अपने पति की आंखों में कामज्योत्सना ने निहारते हुए स्पष्ट कह दिया था, 'यही जानने के लिए तुमने मुझे बाहर जाने से रोका? अच्छा किया जो तुमने पूछ लिया। सुनो, मैं विधानसभा जा रही हूं, देर रात को लौटूंगी। समझ गये न! और हां, चक्र को दूध पिला देना, वैसे मैंने 'आया' को कह दिया है।' ब्रह्मदत्त गांधी

कामज्योत्सना की ओर देखता ही रह गया था और वह मुंह फेर तुरन्त घर से बाहर निकल गयी थी। यही से प्रारम्भ हुई थी पति-पत्नी के बीच दूरियां, तनाव, घुटन और नफरत का सैलाब। ब्रह्मदत्त गांधी जिस शालीनता से विकलांग सोमायटी का कार्य देख रहे थे। वह नम्रता अब उनमें कम होती जा रही थी। पुत्र जन्म के बाद वह अपनी पत्नी के व्यवहार से कुंठित था। शनैः शनै उनका उदार-चित्त अपने ही मन से विद्रोह करने लगा था। सोमायटी के दफ्तर में बैठे-बैठे वे कामज्योत्सना की मनःस्थिति के बारे मे सोचते रहते। क्या हो गया है कामना को? वह उससे उपेक्षित व्यवहार क्यों करने लगी है। अब जबकि राजनीति में भी वह दर्जा हासिल कर चुकी है। निरन्तर उसका व्यवहार हेय होता जा रहा है। वाह! काम-ज्योत्सना की राजनैतिक कामनाएं कितनी बढ़ गयी हैं। शुरू-शुरू में राजनीतिज्ञों से कामज्योत्सना को मिलवाकर कितना बड़ा अपराध किया है। उसकी अंकुरित आकांक्षाओं को मार्ग दिखलाकर ब्रह्मदत्त गांधी ने अपने जीवन मे शूलें बिखेर दी थी।

वे ही उसे राजनैतिक-पैंतरेबाजियों से परिचित करवाते रहे थे। तब उन्होंने कहां सोचा था कि इसी के सहारे सहधर्मिणी राज्य विधान-सभा का टिकट पाकर जीत जायेगी।

लेकिन अब! चुनाव जीत लेने के बाद कामज्योत्सना प्रदेश राजनीति मे अपनी स्थिति बनाने के लिए इतना व्यस्त होती जा रही थी कि उसे अपनी गृहस्थी का कोई ख्याल नहीं रहता। पति के प्रति तो उसके मन में कभी समर्पण भाव था ही नही। ब्रह्मदत्त गांधी का पति हो जाना काम-ज्योत्सना के लिए एक इत्तफाक ही था, पुत्र चक्र को समय मिलने पर सुबह-शाम थोड़ा-सा प्यार कर पुचकार लेती थी कभी ढेर सारे खिलौने वह ले आती तो कभी नयी-नयी पोशाकें। नन्हां बच्चा इन आवश्यकताओं की पूर्ति मे मगन रहता था।

अब कभी-कभी ब्रह्मदत्त गांधी को लगता कि उसने कामज्योत्सना को शुरू से ही राजनीति मे जाने से न रोककर अपनी पत्नी को खो दिया है।

जीवन के जिन मधुर क्षणों के लिए उसने कामना को अंगीकार कर विवाह रचाया था, उसका प्रत्यक्ष प्रतिफल चक्र का जन्म था। इसके

अतिरिक्त उसे अपनी विवाहिता से कुछ नहीं मिल पाया था।

अब जबकि वह राजनैतिक उछाले भर रही है उसके लिए ब्रह्मदत्त गांधी का कोई अर्थ नहीं रह गया था। देर-सवेर लौटती, अपने पुत्र को प्यार कर ब्रह्मदत्त गांधी की ओर क्षण भर निहार अपने कमरे में चली जाती, जैसे उसने किसी अनजान व्यक्ति को निहारा हो, अपने पति को नहीं।

ऐसे ही पत्नी के उपेक्षित व्यवहार ब्रह्मदत्त गांधी को शूल की तरह चुभ जाते और वे तीव्र प्रति-निष्कर्मता से पलंग पर औंधे पड़ जाते थे। यही घात टकराव इन दोनों के दरमियान मूक था। जुबान नहीं थी इन घटनाओं की, लेकिन घटनाएं सामान्य नहीं थी।

दिन, प्रतिदिन बीतते रहे। महीनों पर महीने चढ़ते रहे, चढ़ते हुए महीनों को तीन वर्षों ने जैसे-तैसे भोगा। कामज्योत्स्ना का भोग, संभोग और समाधी, सभी राजनैतिक हो गये थे। लगा, इसी घटनाक्रम की प्रकृति ने गांधी परिवार के लिए सुनिश्चित कर दिया था। वैसे ब्रह्मदत्त गांधी देर सवेर कामज्योत्स्ना के करीब आते और उसी की बातों में बतियाने लग जाते थे। बस यही उनका दांपत्य सुख था पर इनकी विडम्बना देखिये, नियति ने यह सुख भी ब्रह्मदत्त गांधी से छीन लिया था।

अपनी पत्नी के स्पष्ट निर्देशों के बावजूद ब्रह्मदत्त गांधी कभी कभार बिन बुलायें मेहमान की तरह कामज्योत्स्ना के राजनैतिक कक्ष में घुस आते थे, इस सामान्य क्रम की एक घड़ी ने उन्हें पत्नी की राजनैतिक-भोक्ता की स्थिति से परिचित करवा दिया। वे सकते में आ गये। मस्तिष्क पर तीव्र प्रहार-सा हुआ और वे आँखें मूंदे उल्टे पाँव पुनः लौट चले थे।

एक राजनैतिक पुरुष-मित्र उसकी विवाहिता को अपनी बातों के घेरे में डाले उसके मुख-मंडल को कुंठित किये जा रहा था और कामज्योत्स्ना विरोध की स्थिति में नहीं थी। वह हार्दिक मान तक पहुंच का आसान रास्ता बना रही थी। इन रास्तों पर बिखरे हुए कांटों को बिना हाथ लगाये नहीं चुना जा सकता, इसे वह अच्छी तरह जानती थी। और तो और दो-चार कांटे लग जाने की कल्पना से भी उसके मस्तिष्क का कौतूहल इनकार नहीं कर पा रहा था।

पर यह सब सामयिक था। इसी से यह जुड़ा हुआ पुरुष मित्र कामज्योत्सना के सुनिश्चित अंग के मायावी प्रत्यंगों को वार्तालाप के दरमियान ही छेड़ने पर आमादा था। और आसान रास्ते के बारे में गुप्त बातों को बतला रहा था। कामज्योत्सना उन सारे पड़ावों को ध्यान से सुनकर समझ रही थी।

विपरीत दिशा में दृष्टि होने के कारण अपने पति की तुरन्त उपस्थिति और फिर पलायन यद्यपि कामज्योत्सना नहीं देख पायी पर उसके पुरुष मित्र ने ब्रह्मदत्त गांधी की पीठ को देख लिया था। अब वह तुरन्त वहां से निकल जाने हेतु तैयार हो गया। कामज्योत्सना ने उसे कुछ और बतियाने का आग्रह किया पर दुबारा मिलने का आश्वासन देकर वह चला गया था।

पुरुष मित्र के चले जाने के बाद कामज्योत्सना ने अपने वस्त्रों को सुव्यवस्थित करते हुए अपने चेहरे पर दोनों हथेलियों को फेरा फिर बालों पर अंगुलियां फेरती हुई वह कक्ष से बाहर आ गयी थी। अब उसका सामना अपने पति से हुआ पर वहां ब्रह्मदत्त गांधी कहां थे? वहां उनकी देह थी, और शेष बची थी उनके मस्तिष्क में कौतूहल करती आक्रोश, विद्रोह की निम्नस्तरीय तह। पर प्रतिशोध का स्वर नहीं था। आंखों में सर्वत्र लालकण विद्यमान थे लेकिन पुतलियों का रंग सामान्य था। कामज्योत्सना सदैव की तरह अपने पति की ओर बेरुखी से निहारती हुई बोली, 'मैं पंचवाटिका कुटीर जा रही हूं। मुख्यमंत्री उद्घाटन करेंगे और मैं समारोह की अध्यक्षता।' ब्रह्मदत्त गांधी ने कोई प्रतिउत्तर नहीं दिया और ना ही कामज्योत्सना ने उत्तर पाने की कोई प्रतीक्षा की। वह चली गयी थी। और आक्रांत हो आया उसका पति।

ब्रह्मदत्त गांधी की मानसिक आतंकित परिधि में समाये विद्रोह के जीवाणु अपनी निम्नस्तरीय तह को छोड़कर आवेश के उच्चस्तरीय ताप में पहुंच गये थे। आवेश का ऐसा तूफान उठा कि पीटर-स्कॉच की पूरी बोतल घट कर गये वे। फिर एक धमाका हुआ और खाली बोतल के अनेकों टुकड़े फर्श पर अपना लघु-नृत्य कर शांत हो गये थे।

वे बाहर आये। कार स्टार्ट की और सूनी सड़क पर निकल पड़े थे।

ब्रह्मदत्त गांधी का राजनैतिक भविष्य भी वातावरण के देश पूर्ण रूपों में उनकी सम्पूर्ण देह का लकवाग्रस्त घोषित हो चुका था। एक राज्य के आंदोलन को शक्ति से कुचलने के असफल प्रयास में दूसरे राज्य का प्रशासन अस्त-व्यस्त हो गया। ऐसा ही ब्रह्मदत्त गांधी के साथ हुआ. वे अपनी पत्नी के विपरीत आचरण व चरित्र हनन से शोक-शून्य हो गये और मुहल्लों में उनकी कार एक ट्रक से भिड़ गयी थी। वे अचेत अवस्था में यहीं पहुंचाये गये और तब खबर सुन उनकी विवाहिता कामज्योत्सना तत्क्षण ही समस्त कार्यक्रम रद्द कर वार्ड में आ पहुंची थी।

चेतन अवस्था में आने के बाद ब्रह्मदत्त गांधी को ज्ञात पाया कि उनकी विवाहिता तो उनके सम्मुख ही है लेकिन उनके अपने शरीर का निचला अंग बेकार हो गया है और वे अपने दोनों पांव खो चुके हैं।

चिकित्सकों की सलाह पर कामज्योत्सना ने अपने पति के दोनों पांव काट दिये जाने वाले दस्तावेजों पर हस्ताक्षर भी कर दिये थे लेकिन ब्रह्मदत्त गांधी ने ऐसा हो जाने के पूर्व एक बार फिर चिकित्सा विशेषज्ञों से सलाह मशविरा किया और विकलांग सोसायटी के अपने व्यक्तिगत अनुभवों के कारण अन्तिम निर्णय पांव नहीं काटे जाने का ही हुआ और आपरेशन कर पैरों में स्टील रॉड लगाकर उन्हें व्हील चेयर पर बिठा दिया गया।

ब्रह्मदत्त गांधी के पैर कटने से रह गये लेकिन वे किसी कार्य के भी नहीं रहे थे। शरीर का शेष भाग उनके अपने कब्जे में था अतः परिस्थितियों को मद्देनजर रखते हुए उन्होंने अपनी विवाहिता कामज्योत्सना को उसी के भाग्य पर छोड़ दिया था।

और स्वयं कामज्योत्सना ! अपने पति से अनिवार्य सेवा-निवृत्त होकर भारतीय राजनीति में पूर्णतः समर्पित हो गयी थी। और इसी सम्पूर्ण समर्पण भाव ने उसकी राजनैतिक स्थिति में चार-चांद लगा दिये थे। हाईकमान तक उसकी पहुंच व्यक्तिगत हो गयी और राज्य प्रशासन में वह सशक्त मंत्री होते हुए प्रभाव पूर्ण नियंत्रण को संजोये हुए थी।

नियति की नीयत असाधारण थी। भाग्य की रेखाएं हथेली पर शाश्वत थी, बात भले ही साधारण हो पर मस्तिष्क का कौतूहल नियति

का असाधारण प्रतिफल था।

मन को दबाकर जब वैभव मंत्री महोदया की कोठी से बाहर निकला तो पीछे-पीछे से स्वर उभरा था—

'सुनिये जरा, आपको मंत्री महोदया ने तुरन्त बुलाया है।' यह स्वर निजी सचिव नारायण का था। वैभव पलटा और नारायण के साथ पुनः कोठी के भीतरी कक्ष में चला आया जहां कामज्योत्सना बैठी हुई उसकी प्रतीक्षा कर रही थी।

'आओ वैभव बैठो। तुमसे बहुत कुछ कहना है' वैभव ने हाथ जोड़कर मंत्री महोदया का अभिवादन किया फिर वह सोफे पर बैठ गया था। तब उसके मन के किसी कोने में दिव्य स्पंदन था तो मस्तिष्क की विचार शृंखला में कौतूहल। मंत्री महोदया द्वारा बुलाये जाने का प्रयोजन उसकी सामान्य ग्रहण क्षमता के बाहर था।

वह चुप रहा, पर कारण समझ पाने को उसकी मानसिक क्षमता तेज हो गयी थी। कामज्योत्सना वैभव को निहारती रही। कुछ क्षण मौन। वह कहना चाह रही थी लेकिन शब्दों को खोज पाना कठिन लग रहा था। कामज्योत्सना ने वैभव के चेहरे से अपनी नजरों को हटाया तो उसे ध्यान आया कि आदेश की प्रतीक्षा में नारायण खड़ा है। मंत्री महोदया ने उस ओर देखे बिना परम्परागत मंत्री पदयुक्त वाणी में कहा, 'नारायण, तु जाओ कल आना। आज मैं थक गयी हूं। हां, आराम करूंगी। समझे।'

'जी मैडम।' पी० ए० एक क्षण भी बिलम्ब किये वहां से चला गया था।

अब कमरे में रह गयी थी मंत्री महोदया और उसके बेटे का ट्यूटर बेचारा, बेचारा इसलिए कि वह राज्य की सक्षम मंत्री महोदया के सामने असहाय अध्यापक की निम्नस्तरीय स्थिति में था। उसका वजूद ही क्या था? उसकी चित्रकारिता या उसका अध्यापन। जो भी माना जाये वह सत्ता की राजनैतिक भूख के सामने सामाजिक चौखट का बकरा था। वह भी अमर बकरा हो ऐसा नहीं, सामान्य बकरा था जिसे कभी भी राजनैतिक भोजन में सब्जी के रूप में परोसकर खाया जा सकता है। सत्ताधीशों को ऐसा भ्रम हो जाना सामान्य था।

'वैभव, तुम्हें जब से देखा है सच, मैं कोई निर्णय नहीं ले पाती।' कामज्योत्सना के शब्द जहां वैभव के कर्णों में स्पन्दन करते हुए मस्तिष्क से जा टकराये, वहीं उसकी काजल-युक्त आंखों का तीव्र प्रकाश बिम्ब वैभव के पूरे सौम्य चेहरे पर छा जाने हेतु निकल पड़ा था। लेकिन वैभव की समस्त मंत्री महोदया के शब्दों का सुनिश्चित अर्थ समझ नहीं पायी। वह सामान्य ढंग से बोला, 'जो मैं समझ नहीं पा रहा हूं आप क्या कहना···?' आखिर प्रश्न काट ही दिया मंत्री महोदया ने।

'खैर जाने दें उसे।' कामज्योत्सना ने विषय को पलक झपकते ही पलट दिया था, 'चक्र की पढ़ाई कैसी चल रही है? पढ़ना भी है या नहीं। उसे कल के भारत का महान मंत्री बनना है।'

माता पुत्र के लिए क्या-क्या सोचती है? क्यों सोचती है वो ऐसा कि उसकी कोख से जन्मा बालक गगन की ऊंचाइयों को छुए। उसका भविष्य उज्ज्वल हो, महान हो। शाश्वत अर्थ जो भी हो, ये केवल ममता के हृदयगत उद्गार होते है। कामज्योत्सना स्वयं राजनीतिक शतरंज का मोहरा थी इसलिए अपने पुत्र के लिए उसने सत्ता की चाहत को स्वीकार किया था तभी तो महान मंत्री की नवीन उपाधि से उसने चक्र को अलंकृत कर दिया था। खैर।

पल भर पहले जिन गूढ़ अर्थों से सुसज्जित बात कामज्योत्सना कह गयी थी उस विषय से कितनी भिन्न और सरल बात वह वैभव से पूछने लगी थी। यद्यपि चक्र की शिक्षा के बारे में पूछना वैभव को सुखद लगा तथापि वह कामज्योत्सना के लावण्ययुक्त चेहरे को गौर से देखने लग गया था। फिर उसने जवाब दे डाला।

'आपकी अभिलाषा पूर्ण होगी, ऐसा मेरा विश्वास है। चक्र की ग्रहण-शीलता और मानसिक बुद्धि-शक्ति सहज विशाल है। उसे न केवल किताबी सबक बल्कि सामयिक परिप्रेक्ष के नवीनतम सामान्य ज्ञान-विज्ञान तथा राजनीतिक घटना-क्रम का भी विशेष ध्यान रहता है।'

'अच्छा। और उसकी ज़िद्द?' कामज्योत्सना का यह प्रश्न उसके पुत्र के समग्र स्वभाव का महत्त्वपूर्ण प्रश्न था, पर वैभव ने तुरन्त उत्तर दे डाला, 'विरासत में मिले गुण कम नहीं होते मंत्री महोदया। ज़िद चक्र की कम-

जोरी नही बल्कि उसके सुनिश्चित निर्णय शक्ति का आधार स्तंभ होगी। आप घबराइये ना।' कितना तीखा व सटीक प्रतिउत्तर था। और स्वयं कामज्योत्सना! वह तो यही चाहती थी कि वैभव उसके प्रश्नों का तुरन्त सटीक जवाब दे ताकि दोनो के दरमियान तारतम्य स्थापित होने का बहाना मिलता रहे।

एक बार फिर कामज्योत्सना ने वैभव के सौम्य चेहरे को देखा, उसकी संपूर्ण देह रचना को नापा। तब कहीं उसका सुनिश्चित पौरुष उसे सौ फीसदी भा गया था। फिर क्या था, तरंग-सी उठी उसके संपूर्ण अंग प्रत्यंग मे और वह अग्निमय हो आयी।

उसे लगा कि उसके बदन के शोले अंगार हुए जा रहे हैं, वह उतावली मे कोई अनर्थ कर बैठे इसके पहले उसने अपनी आंखें मूंद ली और गहरी निश्वास ली।

फिर वह आँखें मलती हुई मंदिम स्वर मे बोली, 'मैं क्यों घबराऊं वैभव, मैं तो अब निश्चिन्त हो गयी हूं कि आप जैसा पुरुष हमें मिला।'

द्विअर्थी वाक्य का सुनिश्चित अर्थ वैभव की समझ से परे था। उसे मंत्री महोदया के अन्तःकरण मे काम-विलास उद्वेलित करती पीड़ा से कोई सरोकार नही था। वह निश्चिन्त था क्योंकि उसका पौरुष किसी नारी के संसर्ग मे नही आया था। वह स्वयं अपने माता-पिता के बनाये जीवन का एकान्तिक बेदर्द इन्सान था।

और कामज्योत्सना। उसके पास लाखों की दौलत, पद, प्रतिष्ठा और शासन की मान्यता थी। सच पूछो तो कामज्योत्सना के पास बहुत कुछ था परन्तु बहुत कुछ 'सब कुछ' नही होता। इसका एहसास उसे स्वयं को भी था।

से हट गया था।

तंग ब्लाउज के खुले किनारों से निकले मांसल भरे अंकुरित केसर भरा पुष्प की पखुड़ियों के बीच से झांककर वैभव की दृष्टि कौशल को क्यों न प्रभावित करते। पौरुष की यही तो नियति है।

वैभव कभी उन गोष्ठों से अपनी नजर हटा लेता और कभी अधखुले मुंह से इन्हें ताकता रहता। नियति का प्रतिफल नियति पर स्पष्ट था।

'सच, तुम्हारा पौरुष पुरुष से बढ़कर है। सच्च बतलाना, तुम क्या देख रहे थे वैभव ?' मंत्री महोदया का प्रश्न स्पष्ट था।

परन्तु मनुष्य के अन्दर कहीं कुछ कम हुआ करता है या धुंधला-सा अहसास होता है कि मेरे अन्दर कहीं कुछ 'कम' है। यह कम जहां कामज्योत्स्ना के नैराश्य भरे वैवाहिक जीवन से जुड़ा था, वहीं वह कम वैभव के माता-पिता के संघर्षमय तनाव-शैथिल्य से बंधा रहा।

बंधन का मुक्त होना और जुड़ाव का बंध जाना दोनों ही स्थितियां मानसिक हालात की चरम सीमायें थी। कामज्योत्स्ना का प्रश्न यद्यपि वैभव की घबराहट के लिए काफी था पर उसने वह जाहिर नहीं होने दी। वह प्रतिउत्तर में बोला, 'आपका मुखर व्यक्तित्व।'

'भा गया तुम्हें ?' प्रश्न के साथ ही वह मुस्करायी तो चन्द्रमुखी की चांदनी में निखार आ गया। वैभव का मन भर-भर आया। वह वहां से तुरन्त निकल जाना चाह रहा था पर मंत्री महोदया के प्रश्नों का उत्तर ना देना उसकी स्थिति की आंतरिक कमजोरी को दर्शाता या सरासर बेइन्साफी होती जो वैभव नहीं चाहता था। उसने मंत्री महोदया की कद्र को बढ़ावा देते हुए कहा, 'आपका व्यक्तित्व मुझे ही नहीं प्रदेश की सारी जनता को भा गया है, तभी तो आप राजनीति में उच्च स्थान रखती हैं। आप मंत्री हैं और राज्य-सत्ता की सुस्पष्ट छवि आपके व्यक्तित्व का निखार है।'

क्या मंत्री महोदया वैभव के इस प्रतिउत्तर से सन्तुष्ट हो गयी। जी नहीं, सम्पूर्ण प्रयास के बाद भी नहीं कथित हुआ वही जो मंत्री महोदया चाहती थीं।

वस्तुतः शासन में बंधे उसके कामज्योत्स्ना के लिए अर्थ और काम-

हुए थे। प्रति उत्तर में वह चाहती थी अपने व्यक्तिगत व्यक्तित्व पर छाये राजनैतिक प्रभुसत्ता के विभिन्न कोणों का समन्वय, उसकी आवश्यकताएं और जो बात है उसे पूर्ण से मधुर कर दिये जाने का कौशल तथा वैभव के पौरुष में समायी उसकी आकर्षण रूप की निश्छल छवि। वह अपने अंग-पात्र में समायी कृपणता को असीम ताजगी में बदल देने का सुनिश्चित प्रतिउत्तर चाहती थी। लेकिन चाहत का रंग वैभव के प्रतिउत्तर से कुछ धुंधला हो गया जब मंत्री महोदया ने अपनी बात कह ही दी।

'तुम्हारे मुख-कमल से मैं अपने व्यक्तित्व के राजनैतिक पहलू को नहीं सुनना चाहती थी। मेरा प्रश्न मुझमें समायी नारी की महत्वाकांक्षाओं से सम्बन्धित था। क्या तुम भी मेरे व्यक्तित्व का आकलन बतौर नारी की हैसियत न कर राजनैतिक प्रभुसत्ता से ही कर पा रहे हो? आश्चर्य हुआ मुझे कि तुम एक चित्रकार के बेटे हो। मैं तो तुम्हारे कलाकार मन में समा जाना चाहती हूं। क्या तुम मेरे नारी मन का चित्र खींच सकते हो? यदि हां, तो मैं तुम्हारे सामने प्रस्तुत हूं—एक चित्र बना डालो।'

कामज्योत्सना ने जिस वेग से शब्दों को बांध-बांधकर उच्चारित किया था वह प्रदेश की महिमा शालिनी मंत्री महोदया के अन्तःकरण के कुछ 'काम' की सफल प्रस्तुति थी, लेकिन वैभव का कुछ कम कामज्योत्सना के इस काम से भिन्न था।

यह भिन्नता ही वैभव के पौरुष को नारी में समायी रिक्तता को भरने में बाधक था। मां का वेश्या रूप और पिता का असहाय मन, तत्पश्चात् उनकी अकाल-मृत्यु, इन तीनों का इतना गहरा आघात वैभव के मन-मस्तिष्क में था कि न तो उसका पौरुष ही बोल पाता था और ना ही नारी की ना में समाई हां की परिणति, उसकी आवश्यकता।

वैभव ने एक दृष्टि कक्ष के चारों तरफ डाली फिर कामज्योत्सना की तरफ निहार वह खड़ा हो गया था।

'अच्छा मुझे आज्ञा दीजिये।' विदा लेते हुए वैभव का चेहरा सफेद हो आया था···कुछ घबराहट, कुछ बौखलाहट, कुछ असमंजस और कुछ अनहोनी का डर।

'घबराओ नहीं वैभव, तुम्हें मेरे नारी मन का चित्र तो बनाना ही होगा

यह प्रदेश की सशक्त मंत्री कामज्योत्सना का आदेश है।'

वह भी खड़ी हो गयी। साड़ी को ठीक किया और वैभव के समीप चली आयी थी। तब वैभव आंखों पर जोर डाल कामज्योत्सना को निहारता ही रह गया था।

अगले दिन वैभव चक्र को ठीक से पढ़ा नहीं पा रहा था। पता नहीं क्या था वैभव के मन में जिसे वह स्वयं भी नहीं समझ पा रहा था। चक्र को पढ़ाते वक्त रह-रहकर कामज्योत्सना की तस्वीर वैभव की आंखों के सामने अदृश्य-सी आकर घूम जाती और कल्पना शक्ति पर धुंधली एहसास की रेखाएं डाल निकल जाती थी। क्या था वह सब कुछ, जो वैभव को अप्रत्याशित लगा था।

समझ-समझ का फेर था या थी नासमझी, इसे भी वैभव का अनुत्तरित अंतःकरण नहीं समझ पाया था।

कामज्योत्सना का वैभव के समक्ष प्रस्तुतीकरण नारी विहीन नारी का कौतूहल था या पुरुषविहीन नारी का समर्पण? नारी सजग है, नारी अपने अधिकारों को पहचानने लगी है, नारी पुरुष से कम नहीं है पर वह पुरुष के समकक्ष भी नहीं है, क्या वह पुरुष से आगे है या निरन्तर आगे बढ़ रही है?

नहीं, यह भ्रम है क्योंकि पुरुष का पौरुष नारी को आगे नहीं बढ़ने देना चाहता। ब्रह्मदत्त गांधी का पौरुष जब तक था, कामज्योत्सना के स्वच्छंद जीवन और राजनैतिक प्रभुसत्ता में बाधक था। पौरुष में कमी आयी और नारी आगे बढ़ने लगी।

वह प्रदेश की वरिष्ठ वैभव शालिनी मंत्री महोदया बनी पर अब उसका जीवन? वह फिर पौरुष के पीछे भागने की भागने लगी थी। तब, नारी पुरुष से कहां आगे है? समकक्ष भी नहीं। यही शाश्वत सत्य है। वस्तुतः जो नारी के साथ-साथ चलते हैं वो उसे अपने से बहुत ज्यादा आगे नहीं जाने देते।

चक्र को आज वह चित्रकला का दर्शन स्पष्ट करवाना चाहता था लेकिन ड्राइंग पेपर पर बार-बार कामज्योत्सना का भ्रम ही चित्र में उभर कर सामने आ रहा था। जितनी भी रेखायें उसने खींची उनका सम्बन्ध चक्र

की छाया में था। प्रदेश की महिमाशालिनी मंत्री महोदया में था, पर उस चित्र
का सरोकार कर चक्र से जोड़ नहीं पा रहा था। सच, चित्रकला का दर्शन
नारी सौंदर्य दर्शन से तथाकथित स्थापित नहीं कर पा रहा था।
वैभव ने बार-बार कोशिश की वह एक ऐसा प्रकृति सौंदर्य का सहज
चित्र बनाकर चक्र की ग्रहणशीलता से जोड़े कि चित्रकला का दर्शन बालक
के बुद्धिकौशल में स्पष्ट हो जाये लेकिन वह असफल रहा था।
चित्र के सारे कोणों से एक ही रूप-यौवन उभरने लगा था,···काम-
ज्योत्सना,···कामज्योत्सना,···बस।

वैभव का चित्त मस्तिष्क के कौतूहल से जा टकराया और झुंझलाकर
उसने उभर आ रहे नारी चित्र पर आड़ी-टेढ़ी रेखायें खींच डालीं। वह
उस चित्र को घसीट-घसीटकर डाली गयी आड़ी-तिरछी रेखाओं के नीचे
दबा देना चाहता था, ताकि वह चित्र पहचाना न जा सके। मगर वह चित्र
उन रेखाओं के पीछे से भी साफ देखा जा सकता था। उसी तरह जिस
तरह प्रदेश की वैभवशालिनी मंत्री महोदया का मातृत्व, कि वह पतिवृत
है।

भला वैभव की मन स्थिति बालक चक्र कैसे समझ सकता था। उसने
प्रश्न किया, 'ट्यूटर अंकल, चित्रकला का दर्शन क्या घसीट-घसीटकर
डाली गयी आड़ी-तिरछी रेखाओं के भीतर भी स्पष्ट होता है?' चक्र की
आवाज ने जैसे वैभव को निद्रा से जगाया, वह आँखें मल अंगुलियों के
पोरों से ललाट को सहलाने लगा। उसे अपनी मूर्खता पर हंसी भी आयी
फिर वह उस चित्र की रेखाओं को ध्यान से देखने लग गया था। उसे लगा,
विकृत चित्र की रेखाओं में कहीं-कहीं शून्यता के बावजूद नारी अन्तःकरण
में लबालब भरे हुए स्नेह का प्रस्तुतीकरण स्पष्ट दिखलायी दिया था।
झुंझलाहट में डाली गयी इन रेखाओं ने स्त्री मन की आंतरिक संरचना की
आंतड़ियों और हड्डियों को स्पष्ट करते हुए नसों में प्रवाहित रुधिर के
स्नेहित संस्कारों को उसकी देह के मध्य भाग पर सहज अंकित कर दिया
था जिसका निर्णायक प्रभाव चेहरे के सुनिश्चित कोण थे जिन पर इन आड़ी-
तिरछी रेखाओं का प्रभाव नहीं पड़ा था।

एक बार फिर वैभव ने संपूर्ण चित्र को अपनी कल्पनाशीलता से जोड़ा

तब उसे लगा कि वह जिस अनुराग को अपने से अलग कर देना चाहता था वही स्नेहित होकर इन आड़ी-तिरछी रेखाओं में समा गया है। उसने चक्र से पानी के रंगों की व्यवस्था करवायी फिर वह तन्मय होकर उस विहृत हो गये नारी चित्र को अपने रंगों से भरने लगा था।

तब बालक चक्र कभी अपने ट्यूटर के चेहरे को और कभी उस चित्र में रंग भर देने की कला को ध्यान से देखने लग गया था। ग्रहणशीलता की जिज्ञासा चक्र के मन में इतनी प्रबल थी कि वह लगातार तीन घंटे तक निःशब्द वैभव की तन्मयता से रंग भरने की कला को निहारता रहा।

जब रंग भर चुके, वैभव ने अपने शिष्य चक्र की ओर देखकर कहा, 'चक्र अब देखो इस चित्र को, तुम्हें तुम्हारे आड़ी-तिरछी रेखाओं वाले प्रश्न का उत्तर मिल जायेगा।'

रंग भर दिये जाने के बाद चित्र बेहद आकर्षक हो आया था। आधुनिक कलात्मकता का सजीव समन्वय यथार्थपूर्ण था। यह चित्र नारी सम्पूर्णता में शून्यता की एक झलक प्रस्तुत करने लगा था। या यूं कहा जाये कि चेहरे पर छाई अभिजात्य पूर्ण वैभवशालीनता के बावजूद उसके जिस्म के मध्य भाग की आंतरिक संरचना को संचालित करता हुआ तपता रुधिर, जो कहीं-कहीं रुक जाता दिखायी देता है, औरत के कुछ 'कम' के अहसास को प्रदर्शित कर रहा था।

वस्तुत: नारी के जीवन का मुख्य काम जहां उसे अपने नारीत्व का सबसे अधिक अनुभव होता है, पुरुष के सौंदर्य को अपने सिद्धहस्त काम से उसके कर्म को जोड़ देती है और वह अपने कुछ 'कम' को सम्पूर्ण में प्राप्त करती है। यही विश्लेषण था इस नारी चित्र का।

आकर्षक बन पड़े महिला चित्र को चक्र ध्यान से देख रहा था पर उसमें समायी गूढ़ता या 'कम' का अहसास उस बालक की समझ से परे था।

'ट्यूटर अंकल, ऐसा लगता है कि चित्र में उभरी औरत का चेहरा परम्परागत चित्रकला और मध्य आंतरिक भाग आधुनिक कला का संगम है। मैं जिन्हें आड़ी-तिरछी रेखायें समझ रहा था वे तो अब लगती है कुछ कह रही है। परन्तु क्या कह रही है? मैं समझ नहीं पा रहा हूं।' ओके ट्यूटर अंकल, ये ट्रेडीशनल और मॉडर्न आर्ट का संगम औरत से क्या कहलवा

रहा है?'

चक्र की ग्रहणशीलता तेज थी पर उम्र का ताल्लुक चित्र की मीमांसा से भिन्न था। वैभव ने चक्र के प्रश्न का बहुत ही सटीक जवाब दिया।

'चित्रकला का पहला और अनिवार्य सबक यही है कि वह चित्र कुछ-न-कुछ बोलता हुआ लगे। आज तुम्हारे लिए इतना ही, क्या बोलता है और कैसे बोलता है, यह उम्र की कल्पनाशीलता पर निर्भर करता है। यह रेखा-चित्र जो कुछ कह रहा है, मेरे उम्र की कल्पनाशीलता थी जो तुम्हारी समझ बढ़ने के बाद ही समझ में आयेगी। अच्छा चक्र, अब मैं चलता हूं और हां यह चित्र मंत्री महोदया को दिखला देना।'

तत्क्षण वैभव चक्र से विदा लेकर चला गया था।

आड़ी-तिरछी रेखाओं से खींचा रंगों के ताल मेल से सुसज्जित नारी-मन के अन्दर और बाहर को प्रदर्शित करते चित्र के अलौकिक कोणों का सजीव आकलन दर्शक के दृष्टि बिम्ब को कुछ इस तरह बांध देता कि नज़रें बार-बार उसे देखने को लालायित होकर कुछ ढूंढ निकालने को बाध्य होती।

बार-बार देखने के बाद भी चक्र की जिज्ञासा सन्तुष्ट नहीं हुई। तब वह चित्र उठाकर अपने अघोषित पिता प्रह्लाद गांधी के कमरे में आ पहुंचा था।

और स्वयं प्रह्लाद गांधी ! नारी विहीन पुरुष की भूमिका को जीते चेहरे पर शान्त अंधेरे निभा रहे थे। उनका जीवन नीरस था—एकान्तिक कमरे और घर की चारदीवारी में बंधा, अपनी प्रभुसत्ता को बचाये हुए। उनकी अपनी विवाहिता ममता की निश्चित गोलाई में रमणी सेवती [illegible] के राजनैतिक चौखट पर पति की सार्थक भूमिका को दबे मन निभाना वे अपना कर्म कर्तव्य समझते रहे थे। यही सामान्य-सी सादी अपनी ज़िन्दगी [illegible] बिना में अधूरी [illegible] निमक की रेखा, दार्शनिक अन्दाज और [illegible] विरह।

वही मुस्कराहट का दबा-सहमा [illegible] के बरबस बना जाता था, उसने यह चित्र चक्र, पिता की झुर्रीदार चेहरे के

ब्रह्मदत्त गांधी को दिखलाते हुए कहा,

'पापा, आज हमारे ट्यूटर अंकल ने यह महिला का अनोखा चित्र बनाया है जरा देखें तो···!

'हूं।' ब्रह्मदत्त गांधी ने चित्र को गौर से देखते हुए अपने आप से ही कह दिया था, 'वाह! क्या खूब चित्र बनाया है? स्त्री, आड़ी-तिरछी रेखायें और रगों का सुव्यवस्थित समन्वय।'

फिर वह अपने पुत्र की ओर देखकर बोले, 'चक्र, वाकई तुम्हारे ट्यूटर द्वारा बनाया गया चित्र दमदार है—अनोखी अदाकारी।' फिर वह अपने आप से पुनः बोल पड़े थे, 'नारी चेहरे की उभरी मुस्कान और स्त्री-मन की खोखली घुटन, चेहरे पर सौम्यता और दिल उमड़ता भूचाल।'

फिर चक्र ने वह प्रश्न अपने पिता के सम्मुख दोहराया जो उसने वैभव से पूछा था, 'पापा, कुछ कह रहा प्रतीत होता है न चित्र ?'

'हां, बहुत कुछ कह रही है चित्र में उभर आयी महिला।' चक्र की बात से सहमति जाहिर की थी ब्रह्मदत्त गांधी ने, लेकिन अब ?

'पापा, चित्रकला का अनोखा संगम इस औरत से क्या कहलवा रहा है?'

पुत्र का प्रश्न पिता की अंतर्वेदना को झकझोर गया था। ब्रह्मदत्त गांधी ने अपने पुत्र के मासूम चेहरे की ओर देखा फिर चक्र के प्रश्न पर मनन-शील हो गये।

उत्तर यद्यपि उनसे बन नहीं पा रहा था फिर भी वे बोले, 'जहां चेहरे की सौम्यता, तुम्हारी मां के वैभव में समायी ममता को प्रदर्शित कर रही है वहीं शरीर के मध्य भाग के अवयवों को जोड़ता-तोड़ता हुआ रुधिर प्रवाह···।' सहसा वे रुक गये। सतुलित हुए और अपने ही जीवन में निरंतर रेंगती औरत से सम्बन्धित उत्तर को वे अपने पुत्र के समक्ष टाल गये, 'चक्र बेटे, चित्र कुछ कह रहा है यही इस चित्र की सार्थकता है। क्या कह रहा है? इसे बढ़ती उम्र में और वक्त के दरमियान तुम स्वतः ही समझ जाओगे।'

चक्र पिता के उत्तर से संतुष्ट नहीं हुआ था पर उसने जिद भी नहीं की। उल्हाना भर कह दिया।

'पपा, आपने भी हमारे ट्यूटर अंकल जैसा जवाब दिया फिर भी धन्यवाद।'

कुछ रुक उसने स्वयं धन्यवाद देने का औचित्य सिद्ध कर दिया था, 'यह इसलिये कि चित्र की औरत के चेहरे में समायी वैभवता को आपने मम्मीजी की ममता से जोड़ा। कुछ-कुछ समझने लगा हूं, पर आड़ी-तिरछी रेखाओं मे बहते हुए लहू के प्रवाह को समझ नहीं पा रहा हूं। खैर आप न बतलायें—मैं मम्मीजी से पूछ लूगा।' ब्रह्मदत्त गांधी के हाथ से चित्र झपट कर किशोर चक्र कमरे के बाहर भाग चला था।

फिर लगा, कक्ष की संस्कारित-मर्यादित शान्ति को सन्नाटे ने दबोच लिया हो, पर उसी चिर-परिचित शान्ति का श्वेत रंग ब्रह्मदत्त गांधी के चेहरे पर मर्यादित उभर आया था। उन्हें लगा शरीर के अन्दर बहते हुए रुधिर का लाल रंग धीरे-धीरे दृढ़ होती जा रही उनके जीवन की मौन शान्ति मे फीका होता जा रहा है। राजनैतिक कुशला-पत्नी का समाज सेवी पति समाज की मर्यादाओं को कैसे तोड़ सकता था?

पुत्र रूप मे चक्र का जन्म नहीं हुआ होता तो शायद ब्रह्मदत्त गांधी कभी का अपनी पत्नी से सम्बन्ध विच्छेद कर स्वतन्त्र विचरण करने लग गया होता, परन्तु जिस्मानी रूह के सार्वभौमिक संसर्ग ने जब औलाद की उपस्थिति का आभास करवाया तभी तो सांसारिक मंच पर पति-पत्नी घोषित किये गये थे। सच, ब्रह्मदत्त गांधी अपने आपसे घिर आये थे। जो कुछ उन्होने अब तक देखा, पाया और भोगा था वही उनका सत्य था।

और सत्य को छुपाये रखना, गूढ़ कर देना सांसारिकता है तभी तो संसार को माया कहते है। वस्तुतः कला को छिपाना, रहस्य को रहस्य बनाये रखना ही तो कला है। अपने जीवन के गूढ़ रहस्य को भला किसी ने सार्वजनिक बनाया है?

ब्रह्मदत्त गांधी ने टहनी पर निखर आयी जिस सुन्दर कली को तोड़ उसकी अंकुरित पंखुड़ियों को अपने अंगुष्ठ और अंगुलियो की पोरों से खोलकर उसमे प्रस्फुटित होते हुए स्त्री-केशर को सूंघा था, उसकी सुगन्ध के मायने क्या थे?

कली के हृदय का रहस्य आज भी गूढ़ था। भला शारीरिक सौन्दर्य की

कभी किस ने उपेक्षा की है ? मन-चक्षुओं को सादा जीवन उच्च विचार ही पसन्द क्यों न हो, चर्म-चक्षुओं को अंगों का लावण्य और आतें ही बोलती शरीर की सुन्दरता अच्छी लगती है। विस्तृत जगत के मायाविक रहस्यों को अगर एक ही शब्द में कहा जा सकता है तो वह है--चर्म जगत।

त्वचा की सृष्टि में शरीर का सर्वोपरि स्थान है। या यों कहें—अस्थि चर्ममय संसार में मानव देह का स्थान सर्वोपरि है।

इसी देह के माया-पाश में बंधकर रह गया था—ब्रह्मदत्त गांधी। क्या त्वचा की सुन्दरता की मोह-माया से मुक्त होना आसान है ?

सोचशील ब्रह्मदत्त गांधी ने ह्वील-चेयर के पहियों को अपनी मुट्ठियों में कसकर जकड़ लिया, फिर वे उन्हें दो-चार कदम आगे-पीछे करने लगे थे। मस्तिष्क की संवेदना आगे-पीछे चलते ह्वील चेयर के पहियों में गति-शील हो गयी, जिसका अन्तिम परिणाम था—'सोच-शून्यता।' ब्रह्मदत्त गांधी ने कुछ देर बाद हाथ थक जाने पर पहियों को रोक दिया या फिर लगा, उन्होंने अपने बदन को ढीला छोड़कर शान्ति की खोज का रास्ता प्रशस्त कर दिया हो—ओम शान्ति; अशान्ति; प्रतिशान्ति में से चिर-शान्ति को ढूंढ़ रहे थे—ब्रह्मदत्त गांधी।

सार्वजनिक मंच से राजनैतिक भाषण देकर कामज्योत्सना आठ सौ बासठ किलोमीटर का सफर तय करती हुई लौट रही थी। पर कहाँ···? अपने सामाजिक गृहस्थ मंच पर पूर्णतः स्वयंभोक्ता नारी का एकान्त-चित्त संवाद खोलने, जिसे वह कार की पिछली सीट पर लेटे हुए मन स्थिति के अनुकूल अपने बेटे के ट्यूटर 'वैभव' के लिए तैयार कर रही थी।

चौदह सभाओं में दस बार उसने भाषण दिये थे, जिसका मुख्य मुद्दा जनता की भावनाओं को उभारकर राज्य-सत्ता से जोड़ना था। फिर आत्म-सम्मान को पूजनीय अवस्था में जनता के समक्ष प्रस्तुत कर देना था। हर सार्वभौमिक सत्य को जनता के द्वार पर खड़ा कर उसकी रक्षा हेतु मिन्नतें माँगना, जिससे जनता के मन में सत्य कहने वाले पक्ष पर पूर्ण श्रद्धा-सुमन होकर समर्पित हो जाने हेतु तत्पर हो जाया जाये, तदनुसार उनकी बात पर मोहर उनके हाथ पर लग जाये।

फिर वही होता है जो सत्य होता है, जो सत्य लगता है जो सत्य दिखता

है। राष्ट्र की एकता और अखण्डता से भला किसे प्यार न होगा? देश की तरक्की और खुशहाली भला कौन नहीं चाहता? भला अमन, चैन और शान्ति कौन जनता पसन्द नहीं करती? इन्हीं सार्वभौमिक सत्यों को राज-नैतिक मुद्दे बनाकर जनता की अदालत में सार्वजनिक मंच पर भाषण के जरिये प्रस्तुत करने की कला में मंत्री महोदया 'कामज्योत्सना' सिद्ध-हस्त थी।

'नारायण, ड्राइवर को बोलो कि गाड़ी रोके।' कामज्योत्सना के आदेश की पालना करते हुए पी० ए० ने चालक को इशारा किया तो कार ब्रेक लगते ही चरमराकर सड़क के बायें किनारे पर खड़ी हो गयी थी। तुरन्त दरवाजा खोल नारायण बाहर आया फिर उसने पिछला दरवाजा मंत्री महोदया के लिए खोल दिया था।

वह बाहर आयी, थकान को जुम्बिशें लेते हुए दूर करना चाहा, या यों कहें—करों को बेमौसम घिर आये बादलों की ओर उठाकर जिस्म की अकड़ को जकड़ से मुक्त करने लगी थी। दृष्टि उठाकर उसने दूर-दूर तक देखा, प्राकृतिक सौन्दर्य की मनोहारी छटा उसे भा गयी। फैले हुए पर्वतों की शृंखला के ऊपरी हिस्सों पर घिर आयी छूती हुई बदली का विहंगम-दृश्य स्त्री-पुरुष के संसर्ग की अनिवार्यता को आत्मसात कर रहा था। इन्हीं पत्थरों के बीच-बीच उग आये पेड़-पौधों के पत्तों की हरीतिमा, सध्या पूर्व ही सूर्य को ढक देने वाली बदलियों से नववधू में छिपे नवीन सुहाग की मौन मधुरिमा में मुख-कमल की मधुर-मोहक झलक का सुनिश्चित तथ्य प्रस्तुत कर रही थी।

कामज्योत्सना ने देखा, बदलियों के स्नेह और पर्वतों पर छा जाने के यत्नों से उनकी चट्टानें हिल नहीं रही बल्कि स्नेहार्द्र होकर दुगने वेग से अपने पौरुष मे दबा आत्मसात कर उन्हें बरसने हेतु बाध्य कर रही हैं। वह भर-भर आयी, सुनिश्चित पौरुष की बाहों मे बंध जाने को। फिर अपने पूर्व-पीठे विलुप्त हो आये नारीत्व के अकाल को समाप्त कर नव-चेतना को अंगीकार कर देने की लालसा कामज्योत्सना के रूप-लावण्य पर छा गयी थी। वह सड़क पार कर बाहें फैला रही दूर एक विशाल चट्टान पर आ बैठी थी।

कली अपने हृदय का गूढ़ रहस्य सुहाग की सेज पर अपनी ही लज्जा की लपटों में छिपते हुए चाद की छाया में खोल देती है, पर प्रस्फुटित पुष्पिका या फूल···? क्या फूल के हृदय में भी कोई रहस्य होता है ? फूल की सुगन्ध पत्थरों के दिल को भी भेद जाती है तभी तो पत्थरों की मूर्तियों पर फूल चढ़ाये जाते हैं, यही उसका रहस्य है। फूल की खुली हुई पंखुडियों का सौन्दर्य चांद के छिप जाने का इन्तजार नहीं करता, वह तो छिटक आयी चांदनी या सांझ के अर्द्धप्रकाश में घिर आये बादल के समक्ष भी अपनी तेजस्वित गन्ध का रहस्य प्रकट कर देती है। यही सब-कुछ कामज्योत्सना की हृदयगत देहयष्टि का आकलन था।

गुलाब के फूल की पंखुडियों का-सा खुला-खुला उसकी देह का सौन्दर्य चट्टान के सीने पर कहर ढाने लगा था। वह उसी चट्टान पर लेट गयी थी। यही थी प्रदेश की सशक्त मंत्री महोदया, जिसका दबदबा बड़े-बड़े अधिकारी को समक्ष को ठिकाने लगा देता था, आज सांझ के झिरमुट में *पर्वत से टकरा देने वाली बदलियों के सौन्दर्य में से कुछ ढूढ निकालने का* प्रयत्न कर रही थी।

लेटी हुई कामज्योत्सना ने देखा, एक बदली पूर्ण वेग से पर्वत के सीने पर टकरायी—धमाका हुआ—बिजली कौंधी और वह पर्वत की देह पर आत्मसात होकर बरसने लगी थी। बे-मौसम की बूंदा-बांदी हुई और मंत्री महोदया के वस्त्र भीगने लगे, लेकिन कामज्योत्सना उसी तरह लेटी रही—बदली के दृढ़ इरादे को अपने जीवन की बदली पर सुनिश्चित करते हुए।

बरसात की हल्की बौछारों से परितृप्त हो आये उसकी देह के निर्विकार हिस्सों को, जो औरत की ममता और पुरुष के पौरुष को सुनिश्चित करते हुए साक्ष्य होते हैं, को सहलाती-सिहरती कामज्योत्सना अपनी ही झुकी-झुकी नजरों से उन्हें निहारने लगी थी, कितनी मादकता शेष रह गयी है उस युवा-पुष्पिका में। पुष्पिका अपनी ही गन्ध से पल्लवित हो आयी, 'कोई आओ रे, देखो तो मुझे कि मैं सुगन्ध से भरी-पूरी अपने स्त्री-केशर को पंखुड़ियों से निकाल सौन्दर्य में मदमानी किसी भंवर के सुनिश्चित पौरुष को आत्मसात करने हेतु लालायित हूं। ओ भंवर आ, आ जा—मेरे यौवान्तिक स्त्री-केशर पर बैठ, सौन्दर्य रस से भर-भर आयी मेरी पंखुड़ियां

को सहला, समझा कि जो मैं चाहती हूं वह भले आदर्श की सार्थकता न हो पर इस संसार की सार्थकता है—मेरे सम्पूर्ण रूप-लावण्य की अनिवार्यता। ऐ भंवर, तेरे सुनिश्चित पौरुष के बिना मैं सब कुछ होते हुए, कुछ भी नहीं हूं।'

प्राकृतिक सौन्दर्य का देह सौन्दर्य से तादात्म्य बरसात की फुवारों में कुछ गहरा हो जाता है। पर मानसिक सौन्दर्य की आध्यात्मिक समझ बहुत देर बाद, उम्र के अन्तिम पड़ाव पर ही नैसर्गिक सौन्दर्य से जुड़ पाती है, वह भी संसार की जनसंख्या के बहुत कम जन पर। नब्बे से निन्यानवे सैकड़ा के बीच स्त्री-पुरुष संसार का सम्भवतः एक ही अर्थ समझते हैं—'अर्थ-देह।' शेष प्रतिशत लोग यम, नियम, सदाचार और आदर्श की बात कहकर संसार के माया रूप को निरर्थक होने से बचा देते हैं—अर्थ और देह पर कुछ अंकुश का आवरण डालकर।

बे-मौसम की बरसात कुछ बूंदें बरसाकर शान्त हो गयी थी। कामज्योत्सना उठी, साड़ी के भीगे पल्लू को अपनी भरी-पूरी छातियों से हटाकर वह निचोड़ने लगी फिर उसी पल्लू को तंग ब्लाउज में से झांकते हुए नारीत्व के संग्रहित शीर्ष भाग पर ढक दिया।

वह खड़ी हुई फिर उसी राजनैतिक चाल से चलकर कार तक आयी जिस चाल से वह चला करती थी। नारायण कार का दरवाजा खोलकर तैयार खड़ा था, मंत्री महोदया धम्म से पिछली सीट पर जा गिरी, 'चलो नारायण।'

निजी सचिव ने ड्राइवर की ओर निहारा, फिर वे दोनों कार में प्रविष्ट हो गये तो कार दौड़ चली थी। बढ़ती हुई कार की गति के साथ ही कामज्योत्सना ने अपने बदन को ढीला छोड़ दिया और सीट पर पसर गयी। अत्यधिक थकान की वजह से मंत्री महोदया की आंखों पर नींद के झोंके काबू पाने का यत्न कर उसके बदन पर समा गये। वह निढाल हो गयी थी।

'मैं' क्या हूं, की अभिव्यक्ति कब सार्थक होती है? जब उसे यह अहसास हो कि मैं जो हूं, वो 'मैं' नहीं थी। राजनीतिज्ञ का 'मैं' आम आदमी से भिन्न होता है। यही भिन्नता उसे आम जनता से भिन्न दृष्टिकोण प्रदान

करती है। ब्रह्मवादि का प्रशासन ठोस होने पर भी सर्व-हर-पर्व खोखला हो जाता है। विश्वास के राजनीतिक का 'मैं' सुन्दर मदमाती नारी-सा तुरन्त यह भी बार-बार बोल उठता है। और जब राजनीतिक स्वयं सुन्दर कंचन-कामिनी मदमाती देहयष्टि हो तो उसका 'मैं' मैं न रहकर ... में बदल जाता है और फिर उसका तदनुरूप आदेश 'मैं' की प्रकर्षता के साथ सीधे प्रहार पर उतर आता है।

कामज्योत्सना के समस्त निर्णय करते 'मैं' की भूमि पर टिके थे— चाहे उनके विभाग की कार्य प्रणाली हो चाहे प्रशासन को चुस्त करने हेतु निम्न-प्रशासन पर असाधारण दबाव हो। व्यक्तिगत जीवन में भी उनके अपने 'मैं' को उच्च स्थान दे रखा था —प्रश्न चाहे प्रेमी से विवाह का हो या अपने पति से व्यक्तिगत अलगाव का। सारे के सारे अर्थ या प्रश्न उनकी 'मैं' की धुरी पर टिके थे। 'मैं' बोलता था और वह करती थी— चाहे अनर्थ हो या सामाजिक नैतिकता का उल्लंघन।

प्रात काल का शीतल वातावरण कुछ ठंडक लिए था, बदन पर अस्त-व्यस्त हुए पारदर्शक महीन नाईटी से छनकर आती ठंडक से मुक्ति पाने हेतु कामज्योत्सना ने पतली रेशमी शॉल ओढ़ रखी थी और प्रात काल की मधुर नींद का लाभ वह औंधी पड़ी भुगत रही थी। दौरे की थकान रात्रि के सम्पूर्ण विश्राम के बाद जाती रही थी, ले-देकर बदन का खिंचाव बाकी था जिसे उठ-बैठ या खड़े हो अगड़ाई भरकर ही पाटा जाना शेष था।

कुछ देर बाद वह उठी। अलसायें नेत्र-बिम्बों को अंगुलियों की पोरों से ससर्ग करा अपने दोनो कन्धों को कुछ ऊपर उठाकर वह पलग से उठ खड़ी हुई फिर कामज्योत्सना ने भरपूर अंगड़ाई भरते हुए खुले मुह से निकली उबकाई पर अपनी प्रति हथेली रख दी थी। वह फिर निवृत होने शौचशाला की ओर मुड़ी ही थी कि शयन कक्ष में प्रवेश करते हुए इकलौते पुत्र चक्र की आवाज ने उसे रोक दिया, 'मम्मीजी, गुडमोनिंग।'

वह रुकी, मुड़ी और मुस्कराकर चक्र की ओर बढ़ आयी, 'वेरी गुड मोनिंग चक्र। कैसे हो, पढ़ाई कैसी चल रही है। कल रात्रि को लौटने में थोड़ा विलम्ब हो गया, सॉरी बेटे।' एक साथ स्नेह, वात्सल्य उठते हुए प्रश्न और तर्क को कड़ी-से-कड़ी बनाकर वह कह गयी थी फिर उसने चक्र को

[illegible] था। [illegible] कामना की सभी बातों के [illegible] लिखने की [illegible] [illegible] दुनिया की मान कर [illegible] है।'

किसी [illegible] बात कह दी थी—पुत्र ने मां को। उसका सही था, कामज्योत्सना के चेहरे की मुस्कान [illegible] था। [illegible] लेकिन एक [illegible] से [illegible] कुछ [illegible] के लिए [illegible] हो गयी थी, लेकिन मुख्य बात हमारे ट्यूटर [illegible] अच्छी बन रही है लेकिन [illegible] चित्र बनाया है। आप देखेंगी तो प्रसन्न होंगी कि [illegible] औरत का [illegible] चित्र [illegible] स्टडी टेबिल पर।' और पुत्र यह कहकर [illegible] आवेदी। [illegible] अपनी मां का हाथ थाम लिया था।

कामज्योत्सना के चेहरे की मुस्कान जो कुछ क्षण पूर्व स्थिर हो गयी थी, पुन: चेहरे पर उभरकर विस्तारित हो गयी। मुस्कान, मुस्कान में छिप गयी थी। वैभव के साथ का गदराया कामज्योत्सना की मदमाती देह का अप्रत्याशित हिस्सा थी। मन की स्मृति का मन पर प्रतिरूप कामज्योत्सना के अनुकूल था। पर वह कुछ कह न पायी और मां ही अपने पुत्र के साथ तुरन्त चले जाने को रोक पायी थी। जाने क्यों, उस समय निवृत्त होने की अनिवार्यता को भी वह टाल गयी थी।

कामज्योत्सना का हाथ थामकर वह उसे अपने कक्ष में ले गया फिर हाथ छोड़ वह स्वयं स्टडी टेबिल के निकट चला गया था। अपने ट्यूटर वैभव द्वारा बनाया चित्र उसने उठाया और खोलकर अपनी मां को दिख-लाने लगा था।

पुत्र के हाथों में पकड़े चित्र का दर्प मंत्री महोदया के अहम पर साक्षात्कार था। नारी चित्र के सभी कोणों से प्रस्फुटित औरत के विभिन्न देह हिस्सों से निकल रही चुम्बकीय तरंगें कामज्योत्सना की खोपड़ी-तंत्र को झकझोरने लगी थी। वह पल-प्रतिपल उस नारी आकलन में समायी सामान्य जीवन की अतृप्त इच्छाओं को देखकर अपने जीवन पर स्वत: महसूस करती रही। प्रस्फुटित फूल की आकांक्षाओं का स्त्री-केशर कुछ मद प्राप्त करने की अभिलाषा को संजोये था।

वही भरा-भरा मायोपिक गोरा चेहरा आकर्षक नाक-नक्श कपोलों तक लटक आयी लट का अपना अंदाज और रूखे बालों की ढीली वेणी का अनोखा सामंजस्य। अभिजात्य वर्ग की संवेदना का प्रभाव चेहरे पर भरे गये गहरे गुलाबी रंगों से स्पष्ट था। परन्तु गर्दन के नीचे शरीर का मध्य भाग यानी धड़ आड़ी-तिरछी रेखाओं के बिन्दुई कोणों में इतना उलझा हुआ था कि मंत्री महोदया को काफी देर तक त्वरित उसे देखना पड़ा, फिर चक्र के हाथ से उसने चित्र ले लिया जैसे वह सब कुछ समझ गयी कि चित्र के ये कोण क्या कहना चाहते हैं।

'मम्मीजी, यह चित्रांकन क्या कह रहा है?' चक्र का प्रश्न पूर्व की भांति सटीक था।

'ऐसा लगता है बेटा कि चित्र में दिखलायी दे रही औरत शारीरिक दृष्टि से सुन्दर है और मानसिक दृष्टि से कुशाग्र बुद्धिशीला। लेकिन अन्दर मन से बहुत दुखी और असहाय लगती है। कुछ 'कम' है जिसे वह पाना चाहती है पर उसकी बुद्धि उसे ऐसा करने नहीं दे रही है, बार-बार रुकावट डाल देती है। इस औरत की काया पर बुद्धि का राज लगता है, मन का नहीं।'

'हैं, इतना गहरा अर्थ! मैं तो समझ ही नहीं पा रहा हूं। मेरे ट्यूटर अंकल ने बतलाया, यह चित्र उम्र की कल्पना शक्ति पर आधारित होने के कारण मेरी समझ में समझ बढ़ने के बाद ही आयेगा जबकि पप्पाजी ने इस औरत के चेहरे को आप से जोड़ दिया', पल भर रुक गया चक्र फिर मां से पूछ बैठा, 'मम्मीजी, क्या आप पर भी बुद्धि का ही राज है, मन का नहीं?'

कैसा जीवन्त प्रश्न था कामज्योत्सना के जीवन पर! चक्र अपनी मां की ओर उत्तर पाने हेतु देखता रहा और कामज्योत्सना? प्रदेश की सशक्त महिमाशालिनी मंत्री महोदया वैभव की चित्रकारिता में डूबी अपने पति की विचार शृंखला को आत्मसात कर रही थी। फिर उसने चक्र को अपने पास खींच लिया, उसे स्नेह से अपनी बाहों में भर लिया था।

'सच्च बेटा, समझ बढ़ने पर कल्पना शक्ति का विस्तार तो होना ही है। फिर भी यह चित्र बहुत-कुछ कह रहा है, यह समझना ही बुद्धि-कौशल है।' वह दो पल रुकी फिर उसने उत्तर को बदल देना चाहा, 'चक्र तुम्हारे

[illegible] के चेहरे से नहीं देखा वह उसकी लगती थी। मैं बुद्धि [illegible] से बढ़ रही हूँ।'

[illegible] कौतूहल कामज्योत्स्ना के [illegible] विशेष [illegible] ...। [illegible] गयी द्वारा [illegible] नहीं थी क्योंकि [illegible] कामज्योत्स्ना को [illegible] उनके बुद्धि-कौशल से [illegible] दिया था [illegible] स्वयं बुद्धिरूप राजनीतिक और वह अनुकूल हो गयी। वह अपने आपको [illegible] की मीमांसा थी। [illegible] उनके चेहरे और व्यवहार [illegible] लगाती थी। [illegible]

लेकिन यौवन के विकास के [illegible] प्रवाह भी क्या कामज्योत्स्ना के और [illegible] गया [illegible] टूटा दिन अनुकूल था ? क्या वह धीरे-धीरे दबी दबी और [illegible] थी ? [illegible] जो उनके अन्तर्मन से उठी मन जो भी हो [illegible] की अभिव्यक्ति। कामज्योत्स्ना के मन में बार-बार उसका स्वर दबा, दुःखी व [illegible] था। [illegible] लेकिन उसकी बुद्धि उसमें थी, बार अपने [illegible] को पार देने का स्वर [illegible] विघ्न उत्पन्न करती थी, चाहे वह अनजान ही थी।

पर अब वैभव से कामज्योत्स्ना की मुलाकात के बाद उसका मन उसके बुद्धि-कौशल पर बार-बार हावी हो जाता था। दिल की टीस मस्तिष्क तक जाकर अपनी प्रतिध्वनि जाहिर करती थी और बुद्धि सामाजी का ज़ोर मन चंचलता की हदों के बाहर रहने लग गया था। क्या हो गया है उसे, जब वह वैभव को देखती है तो अपने 'कम' का अहसास बढ़ जाता है और वह ट्यूटर के सौम्य चेहरे के तेज और शारीरिक पौरुष को पाने का मानस बना बैठती है। वस्तुतः यह उसके मन का प्रभाव था जो कुछ कम के अहसास को पाटने हेतु बुद्धि पर हावी हो गया था।

'अच्छा बेटा, तुम्हारे ट्यूटर अंकल आयें तो उन्हें हमारे पास भेज देना।' उस चित्रांकन को गोल बना अपने साथ लेकर कामज्योत्सना चक्र से विदा ले चली गयी थी।

परन्तु ये क्या ? शयनकक्ष में पहुंचते ही वह पलंग पर औंधी पड़ गयी थी। प्रभात की शीतलता भास्कर के प्रकट होने के साथ ही कुछ कम हो आयी थी। पर हवा के झोंकों से खिड़कियों पर टंगे पर्दे हौले-हौले हिल रहे

थे। औंधी पड़ी-पड़ी ही कामज्योत्सना ने वह चित्र बार-बार देखा था।

कितना सन्तुलित चित्रांकन किया है वैभव ने ! मद-अवनरित देह का यह कैसा रूप है ? चेहरे पर कितनी सौम्यता है—कितना रस, कितनी मादकता, रूपलावण्य। लेकिन खोपड़ी तन्त्र की वृद्धि ने उसके मन की वेदना को दबा रखा है। बाहरी रूप वैभव-यौवन के साथ भीतरी सवेदना कितनी निर्धन है।

क्या-क्या नहीं है कामज्योत्सना के पास ? एक तरफ सत्ता का मद, इकलौते पुत्र की सहज उपस्थिति तो दूसरी तरफ धन दौलत नौकर-चाकर, समाज में उच्च स्थान, इज्जत। क्या इन सब के बाद भी वह सन्तुष्ट है ? हां है और नहीं भी है क्योंकि उसका पति···? नहीं उसका पति है या पति है यही उसकी वेदना है और नियति की विडम्बना।

फिर कामज्योत्सना ने नारी-चित्र को पटक दिया और आंखें मूद ली, 'ना, कामना···! हां, कामज्योत्सना, इतना मत खो जाओ किसी पुरुष में, कि तुम्हारी राजनैतिक महत्वाकांक्षाओं का ह्रास होता जाये। चरित्र की गंभीरता से विमुखता ही क्या तुम्हें नहीं ले डूबेगी ? जिस 'कम' को 'काम' से पूरा करने की आतुरता तुम वैभव में सजो रही हो, माना कि तुमने कम को पाट लिया लेकिन उस बहुत कुछ का क्या होगा जिसे तुम सत्ता की चौखट में अर्जित कर रही हो। चरित्रहीनता का दाग एक बार लग गया तो जनता के दरबार में तो जाओगी ही, अपने घर में इकलौते पुत्र की आंखों में भी गिर जाओगी। माना, बहुतेरे महान राजनैतिक पुरुष एक नहीं कई कंचन-कामनियों के ससर्ग में रहकर अपने कुछ कम को खत्म कर देते थे लेकिन महान राजनैतिक महिलायें···? क्या अपने व्यक्तिगत जीवन के कम को सम्पूर्ण करने के लिए, वह भी पति के होते, किसी अन्य पुरुष से ससर्ग का साहस जुटा पायी है ? अगर किसी ने ऐसा किया भी है तो क्या उनका राजनैतिक भविष्य सुरक्षित रहा है ?

अपनी उस *कामना को मत देखा करो कामज्योत्सना, जो प्रह्लादन* गांधी के पहलू में आने के पूर्व थी। अब तुम कामना नहीं कामज्योत्सना हो —इस प्रदेश की राजनीति की अनिवार्यता, अपनी महान महत्वाकांक्षाओं की प्रतीक। सत्ता की महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए इच्छाओं का दमन

तो करना ही होगा । उठो, और भूल जाओ उस पौरुष को, उस वैभव को
जो केवल एक पुरुष है । पुनः अपना लो उसी वैभवशालीनता को जो जनता
के लिए प्रदेश की समस्त देवी तुल्य महिला मंत्री हेतु चरित्र के दिखावे से
जुड़ा है ।

बुद्धि की विचार-वेगना ने कामज्योत्सना को जैसे निचोड़ ही डाला
परन्तु दिल के दर्द ने, उसकी टीस ने फुंकार मारती हुई सर्पिणी के समतुल्य
बुद्धि के विवेक पर अपनी अहमियत में समायी 'मैं' का जहरीला डंक डस
डाला, 'तो क्या हुआ, राजनैतिक महत्वाकांक्षाओं के दरमियान वैभव का
पौरुष क्योंकर बाधक होगा ? मैं उसे बन्द कमरे की चारदीवारी में भींचकर
रखूंगी और उस कम को हमेशा-हमेशा के लिए भर दूंगी जिसे मैंने वैभव
के पौरुष से प्राप्त करने का मानस बनाया है । और फिर, आज की राज-
नीति में चरित्र का क्या महत्व है ? चरित्रहीनता ही चरित्र है, स्वार्थ
परायणता ही परोपकार है और व्यक्तिगत दोषारोपण, छींटाकशी...?
राजनीति की अनिवार्यता । राजनीति के जिस पायदान पर आज मैं खड़ी
हूं, यह सब कुछ क्या चरित्र को संजोकर वांछित कार्य कर प्राप्त किया है ?
यह तुम्हारा भ्रम है । वास्तविक जीवन दिखावे के चरित्र से बहुत भिन्न
है और इस भिन्नता को मैं बनाये रखूंगी । चाहे जो भी हो कामना, अपने
जीवन के कम को तो पाटना ही होगा, यही मेरी अनिवार्यता है, मेरे जीवन
की सार्थकता है ।

कामज्योत्सना ने बन्द आंखें खोली, दुबारा बन्द की और फिर खोल
अपलक उस नारी-चित्र को पुनः देखने लगी जिसे उसने पलंग के एक ओर
पटक दिया था । चित्र को देखते-देखते ही उसे निवृत्त होने की अनिवार्यता
का आभास हुआ और वह निवृतशाला की ओर चली गयी थी ।

इन्सानियत का दर्द कब बढ़ता है, इन्सान को मालूम भी नहीं हो पाता ।
जब दर्द अपनी हदों को पार कर जाता है तब अनायास ही इन्सानियत
चीख पड़ती है कि यह क्या हुआ, कैसे हुआ ? इतना रुद्र रूप हो जायेगा,
ऐसा तो किसी ने सोचा भी नहीं था । राजनीति में इन्सानियत का दर्द
नासूर बनने के बाद ही महसूस होता है । तब मानवतावादी दृष्टिकोण की
दुहाई दी जाती है । अस्तु, समस्या जो भी हो राजनैतिक घटनाचक्र इस

तेजी से गतिहीन हो जाते हैं कि समाधान की बजाय दरारें बढ़ती जाती है। सामयिक राजनीति का सार भी यही है और लाभ का दर्शन भी है।

आलाकमान देश की समस्याओं को दल की छवि के अनुकूल देखना है। समस्या को सुलझा देने से यदि दल की छवि प्रतिकूल होने का खतरा एक सैकड़ा भी है तो उसे सुलझाया नहीं जाता। मानवीयता का दृष्टिकोण पंगु हो जाता है और इन्सानियत का दर्द बढ़ता रहता है चाहे समस्या किसी राज्य की हो या राष्ट्रीय स्तर की। इसी तरह राज्य सरकार या उनके मुख्य मंत्री, इन्सानियत के दर्द को राजनीति पर न्यौछावर कर देते हैं। चाहे उपचुनाव हो या मंत्री मण्डल का विस्तार, इन्सानियत के दर्द को खत्म कर देने के स्थान पर राजनीतिज्ञ कुर्सी से चिपके रहने की लालसा में भ्रष्ट तरीकों का इस्तेमाल कर अपने अहम को सन्तुष्ट करते हैं।

वस्तुतः कुर्सी आदमी को भ्रष्ट बना देती है। या यों कहें आदमी कुर्सी पर बना रहने के लिए खुद भ्रष्ट हो जाता है।

कामज्योत्सना नित्य हो नहा-धोकर जब बाहर आयी तब निजी सचिव नारायण कक्ष के कोने में पड़ी कुर्सी पर बैठा था। मंत्री महोदया को देखकर वह खड़ा हुआ फिर हाथ जोड़कर उसने अभिवादन किया। प्रत्युत्तर में कामज्योत्सना ने गर्दन हिलाते हुए अपने दाहिने हाथ से बैठ जाने का संकेत किया। फिर मीले बालों को सुखाते हुए उसने पूछा, 'कितने लोग हैं बाहर में। कोई खास काम का या सब फरियादी ही हैं।'

'बीस-बाईस होंगे। एक को छोड़ सभी फरियादी लगते हैं। वैसे सबरवाल साहब को ड्राइंग रूम में बिठा दिया गया है।'

'कौन सबरवाल ?' कामज्योत्सना ने साड़ी की सलवटों को व्यवस्थित करते हुए प्रश्न किया था।

'वही शराब के ठेकेदारों का सरगना—कुंवर महेन्द्रपाल सबरवाल साहब।'

'अच्छा, वे हैं। जाओ उनसे कहो, मैं पांच मिनट में आ रही हूं।' कामज्योत्सना के चेहरे पर तब रहस्यमयी मुस्कान उभरकर दब गयी थी। वह श्रृंगार टेबिल के पास आयी, आइने में अपने पूरे बदन का अवलोकन किया, साड़ी की एक-एक सलवटों को बेहतरीन किया और तब ब्रश लेकर

काश ! इस सौदे में इनके बदन का अंग भी होता तो वह सौदेबाजी न करता। पहली ही माग-राशि से उसकी मांग में दौलत भर देता, पर *ऐसा नहीं था। यह केवल राजनीति लाभ की सौदेबाजी थी। सत्ता से जुड़े* हुए प्रश्न थे। वैसे प्रश्न, जिनका उत्तर खोज पाना आसान नहीं था।

अस्तु, आज का मानव खुदगर्ज इन्सान है और पैसा ही उसका धर्म और ईमान बनकर रह गया है। प्रजातांत्रिक शासन पद्धति का स्वरूप इतना विकृत हो चुका है कि गरीब जनता की आह पर भव्य वैभव-शीलता पूर्ण शासन तंत्र का महल खड़ा है। जिन अनगढ़ पत्थरों को नींव में भर दिया गया था, वे इतने दब चुके हैं कि आलीशान महल को ध्वस्त कर देने की कल्पना ही नहीं कर पाते। उनका अस्तित्व तो नींव में फंसे रहना ही है। इसी तरह की नींव पर खड़ा महल अपने बेशकीमती ग्रेनाइट आंगन पर रौबदार आयातित कालीन बिछा लेने की सौदेबाजी कर रहा था। सबरवाल ने कुछ देर सोच लेने के बाद कहा—

'मंत्री महोदया, हमारी एसोसिएशन दो जिलों को छोड़ सम्पूर्ण प्रदेश में शराब खोल देने पर पच्चीस लाख से अधिक आपको उपरी रकम नहीं दे सकती। वैसे यह नीति लागू होने के बाद भी हम आपकी सरकार व पार्टी के कमाऊ-पूत तो रहेंगे ही।'

तभी टेलीफोन की मद्धिम पों-पों का स्वर दोनों की वार्तालाप में बाधक बन गया था। न चाहते हुए भी कामज्योत्स्ना ने चोंगा उठा लिया, *'हैलो, कौन है नारायण ?'*

'मुख्यमंत्री जी बात करेंगे।' निजी सचिव ने बताया तो काम-ज्योत्स्ना के चेहरे पर असमंजस के भाव उभर आये थे, 'अच्छा बात करवायें।' क्षण भर के बाद ही मुख्यमंत्री और कामज्योत्स्ना की वार्तालाप का क्रम काफी देर तक चलता रहा था—

'हैलो, गुड मॉर्निंग मुख्यमंत्री जी···। प्रजातंत्र की मधुर बेला में हमारी याद का औचित्य···क्या ? हाँ सुन रही हूँ···। हाँ तो अध्यक्ष महोदय का आदेश है···मानेंगे भाई, और अगर ऐसा है तो उनकी इच्छा अनिवार्य है···। क्या ? दो सौ करोड़ रुपये···! है ... औसत इतनी की रकम कम करने पर ही केन्द्रीय सहायता मिलेगी···। ठीक। लेकिन मैं क्या कर सकती हूँ··· ?

अरे रहने दीजिये, आपसे बढ़कर अकल मुश्त औरत में…! क्यों मजाक करते हैं…? हां, वो तो ठीक है, आलाकमान आलाकमान है और उनका मस्तिष्क भी आला है…। तो सुनिये, दो रास्ते हैं…। नहीं समझे न आप? मैं दोपहर एक बजे आपके निवास पर आ रही हूं, वही बतलाऊंगी…। हां, हां…दो सौ क्या चार सौ करोड इकटठा कर दें…, सत्ता सत्ता है। क्या? …, अरे प्रजातांत्रिक रूप तो बरकरार ही रहेंगे, विरोधियों की बोलती भी बन्द करवा दूंगी…। हां, अच्छा…, ठीक एक बजे। और…? ठीक, समझ गयी…ओ० के, गुड बॉय…।'

और कामज्योत्सना ने टेलीफोन का चोगा रख दिया। चेहरे पर उभर आयी असमंजस व आश्चर्य की रेखाएं टेलीफोन वार्ता के दरमियान ही विदा ले गयी थी। उसके स्थान पर मंत्री महोदया के चेहरे पर विजय की गम्भीर मुस्कान थी। फिर उसने अपना सम्पूर्ण ध्यान शराब के सरगना सबरवाल पर केन्द्रित कर दिया। कामज्योत्सना ने उसकी आंखों में झांककर धीरे स्वर में अर्द्ध सेन्टीमीटर मुस्कराते हुए ठोस तत्व की बात की, 'सबरवाल जी, पूरे राज्य में ही समाज नीति लागू कर शराब-बन्दी हटवा दूं तो…?'

'आपकी मांग के अनुसार पूरे चालीस।' सबरवाल ने तुरन्त सहमति प्रकट कर दी थी।

'ठीक। बीस एडवांस होंगे, वो भी आज शाम चार बजे से पूर्व और शेष आदेश जारी होते ही।'

'आज ही शाम! खैर। कहां, किसको देने होंगे?'

'दोपहर तीन बजे यही टेलीफोन कर लें, पता बतला दूंगी। अच्छा। अब आप जायें सबरवाल जी।'

शराब का सरगना उठ खड़ा हुआ तभी मन्थरा दो गिलास 'रूह अफजा' ले आयी थी। तब मंत्री महोदया ने सबरवाल को शरबत पीने का अनुरोध किया, 'थोड़ी देर बैठ जाइये सबरवालजी, शरबत आ ही गया है तो पीते जाए, कुछ ठन्डक आ जायेगी।'

'जी मंत्री महोदया।' बैठते हुए सबरवाल ने बात जारी रखी थी, 'शराब में डूबी हुई रूह को शरबत से कहां ठन्डक मिलेगी। शराबी को तो सरूर चाहिए कामज्योत्सना जी। पर खैर। आपकी बात जाने नहीं दूंगा।

शरबत में ठन्डक न सही, हां आपके साथ पीने से ताजगी जरूर आयेगी।' और तब शराब के ठेकेदारों का शरगना शरबत के गिलास को एक ही सांस में पी गया था, ठीक वैसा ही जैसा कि सुयोग्य शराबी प्रथम पेग को आख झपकते ही तुरन्त पी डालता है। फिर वह खड़ा हुआ। हाथ जोड़कर विदा लेते हुए, उसकी आंखों की ज्योति जैसे कामज्योत्स्ना के बदन से कुछ खोज पा लेने हेतु लालायित हो, वह बोला, 'शराब से बढ़कर नशा था इस रूह अफजा में। सच आपके साथ पीने से ताजगी आ ही गयी।'

कामज्योत्स्ना को उसकी आंखों में रमती पुतलियों का चलन यद्यपि बुरा लगा था। परन्तु अपने आक्रोश को दबा दिया था। मंत्री महोदया ने सबरवाल को सौदेबाजी में पक्का रहने की अन्तिम हिदायत दी, देखो सबरवालजी, नशा और ताजगी एक साथ कभी हो नहीं सकते। तीन बजे आप नशा करके नहीं बल्कि तरोताजा होकर ही टेलीफोन करना। समझे।'

'जी मंत्री महोदया।' मन-ही-मन सबरवाल को अपनी ही बात पर खीज-सी हुई कि कहां सौदेबाजी की लीक से हटकर वह मंत्री महोदया के रूप-लावण्य में जा फंसा था। कामज्योत्स्ना आखिर उसके लिए राज्य की मंत्री थी कोई कमसीन लौंडिया तो नहीं। इस बात को मन-ही-मन भांपकर वह मंत्री महोदया के घर से विदा लेकर निकल आया था।

सबरवाल के चले जाने के बाद कामज्योत्स्ना ने अपने निजी सचिव नारायण को बुलवाकर आदेश दिया कि एक-एक फरियादी को तुरन्त हाजिर किया जाय। और वह स्वयं साड़ी को फैला सोफे पर पसरकर बगुला भगत की तरह बैठ गयी थी।

सबसे पहला फरियादी उसके निर्वाचन क्षेत्र का देविया भांबी था। पतली मूंछें, सिकुड़ा नाक, सूखे होंठ और चेहरे पर अनगिनत झुर्रियों का साम्राज्य। मैली-कुचैली धोती, फटी अंगरखी और साफा बांधे निरा ग्रामीण, आते ही बड़बड़ा पड़ा था, 'मन्है माफ कर जो मन्त्रीणी, मैं तो सगड़ा सूं मर जासां। ईण आस सूं थानें वोट दिया मंत्रीणी कि था पाणी रो की न की करसो, पर थे को कोनी कियो। म्हानें रोता-रोता जैपुर ताईं आणो पड़यो, अबे कि थानें नारेल चौढ़िजे तो थे कौ? मैं सगड़ा दाणीवाला थानें देस्या।' कहता-कहता वह ग्रामीण देविया भांबी वहीं कालीन पर

बैठ गया और फैंटा उतार मत्री महोदया के पैरों के आगे रख दिया, फिर
अगरखी में से कुछ नोट निकाल गिनने लगा था।

कामज्योत्सना चुप्पी साध सब देख-सुन रही थी तो वह ग्रामीण फिर
बोला, 'सापां हमारी दुज्जन है पर मैं थारें पगां मे राख्यों हूं मंत्रीणी। नैं,
ऐ.की रीपिया है नारेल रा, दस बिडी ने दस रीपिया है। राख-लो। ने म्हाणें
पाणी रे बन्दोबस करावजो. नी तो म्हा सगला तरे मर जांगा।' उसकी
पैनी बुझी-बुझी आशामुखी आखें मत्री महोदया के चेहरे पर टिकी थी, कुछ
आश्वासन पाने हेतु. जैसे वह आतुर हो आया हो लेकिन कामज्योत्सना
नीचे सिर किये शान्त बैठी थी—या तो उसे अपराध-भाव का बोध हो
आया था, या फिर इस ओर उसका ध्यान ही नही था। उस गरीब ग्रामीण
ने अपना फैंटा उठाते हुए ऊंची आवाज में कहा, 'थे की तो बोलो, मंत्रीणी।'

तब कामज्योत्सना ने निजी सचिव को आदेशात्मक भाषा मे कहा था,
'बाबा का नाम और पता नोट कर लो और इससे कहो कि अब ये जाये।
पानी की व्यवस्था हफ्ते मे दो बार टैंकर भिजवाकर की जावेगी। कलक्टर
एवं जिला मजिस्ट्रेट को अर्द्धशासकीय-पत्र आज ही लिख देना। बाबा को
बतला दो कि सरकार सातवी योजना तक सारे गावों मे पीने के पानी की
स्थायी व्यवस्था कर देगी।' ठीक फिर मत्री महोदया ने उस ग्रामीण की ओर
निहारते हुए उसे कहा, 'बाबाजी, रुपये नही चाहिए। तुम वापस रख लो।'

वह ग्रामीण, देखिया भांबी उठ खडा हुआ और नारायण के साथ
बाहर चला गया। पी० ए० ने फरियादी को मत्री महोदया का सन्देश
समझाया और जो रुपये मत्री महोदया ने नही लिए वे सब पी० ए० ने
निरक्षर ग्रामीण से ऐंठ लिए। गरीब रुपये देकर आश्वस्त हुआ और खाली
हाथ लौट गया था।

दूसरा फरियादी था, शासन तंत्र का केवल तंत्र। यानि बाबू द्वारिका
प्रसाद जोशी। वह अपना स्थानान्तरण अपने जिले के उसी कमाऊ विभाग
में चाहता था जहां वह वर्षों से जमा था। परन्तु बाबू के स्थानान्तरण के
मामले में मंत्री महोदया ने कोई खास रुचि नही दिखलायी उसने मात्र
प्रार्थना-पत्र लेते हुए कहा, 'प्रसाद बाबू नौकरी, नौकरी ही है, कही भी हो।
अच्छा मैं देखूंगी।' 'कोई भेंट पूजा ?' द्वारिका प्रसाद जोशी का स्वर स्पष्ट

था। 'नहीं कोई आवश्यकता नहीं। अब तुम जा सकते हो।' मंत्री महोदया का स्वर रूखा था। बाबू द्वारिका प्रसाद जोशी कक्ष से बाहर निकल आया था फिर वह पी० ए० नारायण की आवाज सुन रुक गया था। वह पास आया और तुरन्त बोला, 'बोलो, कितना दे सकते हो?'

'मंत्री महोदया ने तो मना किया है।' हिचकिचाते हुए बाबू ने कहा तो पी० ए० सटीक जवाब देते हुए अन्दर चला आया, 'तो जाओ, मना ही है।' और भ्रष्ट बाबू द्वारिका प्रसाद जोशी अचम्भित-सा किंकर्तव्यविमूढ़ निहारता रहा था।

तीसरे से लेकर सातवें तक फरियादियों का एक झुण्ड था। उनके दल प्रमुख का नाम था—कनीया भील। मुख्य मुद्दा था, इनकी बस्ती में विद्युत लाइन बिछाने का। मंत्री महोदया ने प्रार्थना-पत्र लेकर मीठा आश्वासन दे दिया, वे चले गये थे। आठवें से दसवें तक फरियादियों की समस्या, कृषि हेतु अधिक घटे विद्युत उपलब्ध करवाने बाबत थी। जिस पर उसने आश्वासन दिया कि विद्युत इकाई में तकनीकी खराबी आ गयी है। विदेशों से प्रशिक्षित इन्जीनियरों को बुलवाया गया है। ठीक होते ही कृषि हेतु विद्युत सप्लाई को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जावेगी।

ग्यारवें से उन्नीसवें तक पढ़े-लिखे युवक-युवतियों का एक काफिला था। उनकी मुख्य समस्याएं दो थी—पहली—उनके जिले में दूरदर्शन प्रसारण सेवाएं उपलब्ध नहीं थी और दूसरी—महाविद्यालय में एल० एल० बी० कक्षाएं प्रारम्भ करवाना था। मन्त्री महोदया ने उन सबसे सौहार्दपूर्ण ढंग से बात की और प्रश्नों का जवाब देती रही थी। बीच ही में उसने निजी सचिव को इशारा कर इन युवाओं को कॉफी पिलवाने की व्यवस्था करवाई। यह सब इसलिए आवश्यक था कि इन युवाओं की सहानुभूति मन्त्री महोदया को मिलती रहे और चुनाव के दौरान काम आये, 'देखो भाई, दूरदर्शन प्रसारण सेवाएं आप लोगों को उपलब्ध होनी ही चाहिए। मैं आज ही प्रस्ताव बनाकर केन्द्रीय सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय को भिजवा देती हूं, कार्य अगले छः माह तक हो जायेगा, लेकिन महाविद्यालय में एल० एल० बी० की कक्षाएं प्रारम्भ करने का जहां तक सवाल है आप शिक्षा मंत्री से मिल लें तो ज्यादा बेहतर होगा। वैसे मैं भी उनसे वार्ता कर लूंगी। अच्छा

[illegible] दीवार ही जायें। और
[illegible] हुई। जनता तेज और [illegible]
[illegible] उनकी [illegible] का अनिवार्य
[illegible] निस्तार कर अपने शयन-
[illegible]
[illegible] थी।

[illegible] प्रजातांत्रिक स्वरूप, जनतन्त्र में मन्दिरों का और
जनतन्त्र [illegible] होता है जिसमें तन्त्र की समस्त आराधना-
प्रशंसा जनता को समर्पित हो किन्तु आज 'जन'—गौण और तन्त्र—प्रमुख
हो गया है।

शासन तन्त्र ने जनता को निर्बल, निस्तेज और निराश्रित बना दिया है।
का ढांचा उनके निहित स्वार्थों की सिद्धि का आधार है।
जनता की प्रशंसा-आराधना और स्तुति-भजन इसी तन्त्र को सुदृढ़ करने
के लिए वह भी पांच साल में एक बार की जाती है और उसके बाद जनता
के आक्रोश और असन्तोष को आश्वासनों के लेबल से भी उतार नजरअंदाज
कर दिया जाता है। सारी की सारी जनतांत्रिक मर्यादाओं का निरन्तर
मखौल उड़ाना ही प्रजातांत्रिक शासन पद्धति का स्वरूप रह गया है।

समस्याओं को बनाये रखना और उसे बढ़ावा देना ही आज के प्रजा-
तांत्रिक पक्षानुगत शासन का मुख्य आधार स्तम्भ है, तो भला समस्याओं
का निस्तारण कैसे सम्भव है? कोई अपने पांवों पर स्वयं कुल्हाड़ी थोड़े ही
मार देता है। परन्तु अब ऐसा भी होने लगा है चाहे पांव कम्प्यूटर का ही
हो और कुल्हाड़ी आदिम काल की हो। समस्या बनाये रखना तो आवश्यक
है। यही समय की मांग है। इक्कीसवीं सदी की आवाज है।

फरियादियों की फरियाद सुन मंत्री महोदया जब अपने शयन-कक्ष में
घुसी तब उसने कक्ष को अपने ट्यूटर वैभव से बतियाते देखा। और वैभव!
उसने कामज्योत्सना को देख गांभीर्य धारण कर लिया, फिर उठकर प्रणाम
किया जिसे ग्रहण करती हुई मंत्री महोदया बोली, 'हेलो वैभव, तुम आ गये
वाह! क्या कहने। सच्च तुम्हें देखते ही हमारी सारी थकान दूर हो जाती
है। भाई खूब, नारी चित्र तो काफी रहस्यवादी लगा। पर हां बेह
आकर्षक है।'

'जी शुक्रिया।' भवरे ने मुस्कराना चाहा पर मुस्कान फूल की उपस्थिति मे फूट न सकी जैसे कामज्योत्सना के बेहद सजीले रूप-यौवन की अगड़ाइयो मे उलझकर छिन्न-भिन्न हो गयी हो। वह धम्म से पलग पर बैठ गयी थी और तकिये को अपनी गोद मे रख लिया।

परत-दर-परत रिश्तो की जटिलता, वह भी प्रदेश को सशक्त मत्री महोदया और ट्यूटर वैभव के दरमियान बढ़ती गयी। कौन से सम्बन्ध हैं, किन सम्बन्धों की ओर झुकाव बढता जा रहा था? वस्तुतः बात-बात पर कामज्योत्सना के अपरिचित सम्बन्धो का तारतम्य वैभव की ओर झुकता नजर आ रहा था।

'देखो वैभव, नारी के चित्र से तुमने क्या-क्या नही कहलवा दिया। पर औरत जिसे खोजती रहती है या पाना चाहती है उसके स्रोत का पता नही बतलाया।'

कामज्योत्सना पलग पर अर्द्ध सोते हुए बोली थी, जिसका वैभव ने कोई प्रत्युत्तर नही दिया। वह अपने बनाये गये नारी चित्र की गहनता मे खो गया। चित्र को बनाते वक्त वैभव ने ऐसा कहा सोचा था? वे तो झुंझलाहट में डाली गयी आड़ी-तिरछी रेखाओ का संयोग था कि चित्र मे कोई गूढ़ रहस्य सत्य की भांति छुप गया था। फिर मत्री महोदया ने अपने पुत्र चक्र से प्रश्न कर चित्र की मानसिकता को तत्क्षण टाल दिया, 'चक्र, छुट्टियां कब से पड़ रही हैं।'

'सात मई से।'

'तो ठीक है। नौ मई को अखिल भारतीय युवा विग कांग्रेस आबू पर्वत मे आयोजित की जा रही है। तुम भी चले चलना।

'मम्मीजी, एक सिफारिश करूं। ना तो नही करेंगी।' चक्र अपनी मत्री मां से पूर्व आश्वस्त हो जाना चाहता था कि उसकी बात को मान लिया जाये।

'कहो, ना नही करूंगी मेरे बेटे।' आश्वस्त हो आये किशोर ने अपनी बात कह दी, 'ट्यूटर अकल को भी साथ ले चलेंगे।'

चक्र के प्रस्ताव से जहां वैभव अवाक् रह गया वही कामज्योत्सना के नयनो की 'प्रेम-ज्योति' वैभव के चेहरे पर परावर्तित होने लगी। मानो पुत्र

ने मां के मन के भीतर से छूटे कुछ 'क्रम' को ख़त्म कर देने की स्वीकृति प्रदान कर दी हो। सच भी यही था। मां के होठों की बात छीनकर मंत्री-पुत्र ने उसके लिए रास्ता और भी आसान कर दिया था। चेहरे की गोलाइयों पर रक्तिमा उभर आयी। और मन की प्रत्यंचा पर चढ़ा तीर छूटने हेतु तैयार था, 'प्रस्ताव स्वीकृत। मुझे कोई आपत्ति नहीं है। वैभव, तुम भी साथ चले चलना।'

'जी,...।' कुछ देर सोच अपने मन के इरादे को दृढ़ करते हुए वैभव ने नकारात्मक जवाब दिया, 'कृपया मुझे क्षमा करें। मेरा आप लोगों के साथ चले चलना सम्भव नहीं होगा।' पर शिष्य चक्र ने अपने ट्यूटर की असहमति से कुछ वजनी बात कह दी, 'ट्यूटर अंकल, आप नहीं चलेंगे तो फिर मैं भी नहीं जाऊंगा। क्योंकि जाने का फिर मेरे लिए कोई औचित्य नहीं, मम्मी तो वहां अपने सम्मेलनों मे व्यस्त रहेंगी और मैं कमरे में पड़ा-पड़ा मम्मी के बचे-खुचे चमचों से घिरा हुआ घुटता रहूंगा।' और चक्र ने वैभव के सम्मुख इस तरह मुंह फुला दिया—जैसे कोई बच्चा अपने पिता के सामने अपनी बात मनवाने के लिए जिद् कर रहा हो।

चक्र, मुझे इन छुट्टियों का उपयोग अपनी जीविका को सुयोग्य बनाने हेतु करना है। रंगों की दुनिया में खोकर मैं चित्रकारिता के नये आयाम स्थापित करना चाहता हूं...अकेले, एकान्त मे।'

वैभव के तर्क का प्रति उत्तर इस बार कामज्योत्सना ने स्वतः ही कर दिया।

'जीविका हेतु रंग भरकर भला कभी चित्रकला के नये आयाम बनाये जा सकते हैं?' कितनी सीधी और सटीक बात थी। जीविका हेतु किया गया कोई कर्म महानता की हदों तक नहीं पहुंच पाता है। जीविका से ऊपर हटकर पूर्ण तन्मयता से समर्पित निष्काम-कर्म ही नयी उपलब्धि का मार्ग-दर्शक है। फिर सटीक बात को मंत्री महोदया ने बहु-आयामी बना दिया, 'आप निश्चिन्त रहें जीविका हेतु। चित्रकला के नये आयामों का अर्थ तब तक बेकार है जब तक वह सार्वजनिक सार्वभौम न हो। दिल्ली की किसी आर्ट गैलरी में तुम्हारी चित्रकारिता की प्रदर्शनी लगवा दूंगी तो देखते ही देखते तुम प्रख्यात हो जाओगे। और तो और...हां प्रधानमंत्री से

उद्घाटन भी करवा दूंगी। क्यों, समझ गये न ! बोलो चलोगे न हमारे साथ ?'

वैभव का मन हुआ, वह इस प्रस्ताव को ठुकरा दे। लेकिन ठुकरा देने की हिम्मत कहां थी ? उसी मन के किसी कोने में प्रख्यात होने की अभिलाषा को दबा देना और मंत्री महोदया द्वारा प्रस्तावित द्वार पर खड़े राजनैतिक संरक्षण को खो देना, उसे अपनी बुद्धि पर पड़े पत्थर जैसा लगा। वह कामज्योत्सना के चेहरे को देखता ही रहा। प्रतिउत्तर हेतु कोई शब्द उसकी जुबान पर आ नहीं पाये, चक्र अपनी मां का समर्थन पाकर ट्यूटर वैभव की ओर मुखातिब हुआ, 'ट्यूटर अंकल, मम्मीजी ठीक ही तो कह रही हैं। आपको अब तो चलना ही पड़ेगा।'

'अच्छा चक्र, तुम्हें मैं ना करने के बाद भी कभी ना नहीं कर पाता हूं और अंतिम विजय तुम्हारी ही होती है।'

वैभव के प्रतिउत्तर ने चक्र को आनंदित कर दिया, वहीं कामज्योत्सना के तन में वैभव के सामीप्य की कल्पना से सिहरन उत्पन्न हो गयी। अब क्या होगा ? कैसे होंगे वे क्षण जो उन दोनों की यात्रा के दौरान उभर आयेंगे। वैभव को पा लेने की उत्कृष्ट अभिलाषा मंत्री महोदया के मन में स्थिर हो आयी थी।'

साथ चाहने के बावजूद भी पुत्र की उपस्थिति में कामज्योत्सना वैभव के निकट नहीं आ पायी जब कि कई बार ऐसी इच्छा शक्ति उसके मन में उभर-उभर आयी थी।

'मम्मीजी, मैं तो जाकर पढ़ता हूं। आप ट्यूटर अंकल से बात कर कार्यक्रम तय कर लें।' फिर चक्र ने वैभव की ओर हंसते हुए कहा, 'बहुत मजा आयेगा ट्यूटर अंकल आपके साथ। मैं जाता हूं।'

'चक्र मैं भी...' वैभव ने चले-चलने का मानस बनाया पर कामज्योत्सना ने उसे बीच ही में रोक कर चक्र को विदा कर दिया, 'आप रुकें वैभव। हां बेटे, तुम जाओ।'

चक्र के जाने के बाद रूपवती खड़ी हुई थी और वैभव के समीप आती हुई बोली, 'कुछ भी समझो वैभव, तुम्हारे नारी चित्र के बहु-आयामी विस्फोट ने मेरे मन की मादा को उत्साहित कर दिया है। जरा दिखलाओ

तो तुम्हारी अंगुलियां, जिन्होंने ऐसा गजब ढा दिया है। कहती हुई कामज्योत्सना वैभव के बिल्कुल समीप आकर बैठ गयी। फिर उसने वैभव की अंगुलियों को थाम लिया। वैभव अवाक्! हतप्रभ होकर नारी के कृत्य को देखता रह गया। अपनी अंगुलियों को कामज्योत्सना की हथेली से खींच लेने का साहस वह बटोर नहीं पा रहा था। मंत्री महोदया चित्रकार की अंगुलियों की पोरों को छू-छूकर उसमें से कुछ खोज निकालने को लालायित थी। प्रत्येक अंगुली को उसने आहिस्ता-आहिस्ता दबाया, पर इस अप्रत्याशित दबाव ने वैभव के लहू में स्पंदन पैदा कर दिया, जो जवानी की दहलीज पर पांव रखने के बाद उसे प्रथम बार हो रहा था। मानो उसका शरीर अंगार हो आया हो। तन का सम्पूर्ण ताप मन की अस्मिता से कहीं अधिक था।

कुछ क्षण अंगुलियों की पोरों को दबाने के बाद जैसे कामज्योत्सना स्वयं बेकाबू हो आयी हो। उसने वैभव की अनामिका को ऊपर उठाकर अपने मुंह में डाल दिया फिर उसने अंगुली की नर्म चमड़ी को तीखे दांतों से थोड़ा हौले काट लिया था। इक दर्द उठा और वैभव ने अपनी अंगुली कामज्योत्सना के मुंह से खींच ली, 'यह क्या कर रही हैं मंत्री महोदया? मेरा मन अशांत होये जा रहा है। ऐसा नहीं करना चाहिए आपको।'

कहने को तो वैभव मना कर रहा था लेकिन मन का भीतरी आंदोलित हो रहा था। जवानी के तपते अंगार को मानो ठंडक का आभास हो रहा हो। फिर वैभव के होठों के शब्द रुक गये और बढ़ते हुए नैसर्गिक काम ने उसके मस्तिष्क को झकझोर दिया था।

'आप निश्चित रहें वैभव, आपकी लंबी अंगुलियों में कला का विशाल समुद्र ठाठें मार रहा है। मैं तो एक नदी हूं, तुम्हारे इस समुद्र के किनारे डेल्टा बनाकर मिल जाना चाहती हूं। मुझे अपनी विशालता के घेरे में समेट लो। मैं अपने कुछ 'कम' को खत्म कर संसार की सार्वभौमिकता को जीना चाहती हूं और मैं तुम से पूर्ण परिपक्व अवस्था में प्यार करती हूं। निरी भावुकता नहीं है इस प्यार में, यह यथार्थ है।' फिर कामज्योत्सना ने वैभव का हाथ थामकर आंखें मूंद ली थी। मन के समुद्र में ज्वार उमड़ पड़ा था। वैभव बोला नहीं, उठ खड़ा हुआ तो कामज्योत्सना ने उसे एकाएक

बांहों के घेरे में कस लिया। पुरुष के होठों पर नारी के लबों का अनुमानित चुंबन जड़ दिया। फिर अधर-से-अधर मिल गये। वैभव के संयम की सीमा आखिर कहां तक थी—एक पुरुष था वह ! नारी की खुली छूट का परिणाम उसके पौरुष का विखंडन था। वैभव ने अपना मुंह हटाया नहीं बल्कि उसके दोनों हाथों ने कामज्योत्सना के छरहरे बदन को आलिंगन-पाश में कस लिया था। उसके होंठों का दबाव नारी के अधरों पर अब प्रबल होता जा रहा था और कामज्योत्सना, अन्दर वाले आनन्द में डूबी निश्चेष्ट खड़ी थी—स्निग्ध सांसें और सुखद शीतल होंठ। वैभव कामज्योत्सना से इतना लिपट गया था कि दोनों के पांव कुछ डगमगाये फिर वे दोनों पलंग पर गिर पड़े।

सदियों-सदियों से स्त्री-पुरुष की यही नियति रही है। काम को पाने की लालसा ने समाज के नियम-कायदे कानूनों को कितना व्यर्थ बना दिया है। स्त्री हो या पुरुष; अपने काम को पूरा करने हेतु जीवनसाथी की अस्मिता को नेस्तनाबूत कर देते हैं। सारी-की-सारी नैतिकता दांव पर लगा दी जाती है। वस्तुतः औरत नर के लिए मादा है और पुरुष नारी के लिए नर है। दूसरे सारे रिश्ते सांसारिक माया के खोल में बंधे कभी-न-कभी छटपटाते रहे हैं।

नारी के लिए पुरुष नर तब तक है, जब तक उसमें पौरुष है और पुरुष के लिए औरत मादा तब तक है जब तक मांस का लबालब सुनियोजित ढांचा हो। इन दोनों यथार्थों में परिवर्तन ही स्त्री-पुरुष के अनैतिक संबंधों की परिणति है। पुरुष औरत से संतुष्ट नहीं है या औरत पुरुष से तो विपरीत दिशा में हाथ पैर मारते ही हैं—

भले ही सुने न सही।

पलंग पर पड़े उन्हें दो-चार क्षण ही हुए होंगे कि कामज्योत्सना ने अपने अंग को वैभव के पुरुषार्थ में भरे-पूरे तन से अलग करने की चेष्टा करते हुए कहा, 'इतने उतावले न बनो वैभव कि दिन और रात का अन्तर ही मैं भूल जाऊं। छोड़ो मुझे। अभी मुख्यमंत्रीजी से मिलने जाना है। सच वैभव, तुम्हारी बांहों के घेरे में कुछ पल बस जाने से मेरे बदन में नयी स्फूर्ति पैदा हो गयी है। काश ! अभी रात होती, चाहे अपने यौवन पर होता,

किसी मखमली दूब पर लेटे हुए मेरा चेहरा तुम्हारे सीने पर होता और तुम्हारी अंगुलियां मेरे मादक कुंतलों को सहला रही होतीं और फिर हम दोनों आकाश में टिमटिमाते सितारों को देख रहे होते। बस, मैं और तुम होते और होती ...रंगीन हवाएं, घटाएं, तारे, चांद और असीम सुख, आनन्दित-रोमांटिक बदन की मनुहारता। ब्रह्मांड के नक्षत्र हमें निहारते और हम एक-दूसरे के आगोश में बाहर, रातभर, संसार की एकरूपता को साकार करते। वैभव देखो तो जरा, प्रदेश की सत्ता मंत्री तुम्हारे सामने कितनी नादान है, पर जरा-सी देर में लाखों का सौदा बिगड़ जायेगा। अच्छा, तुम जाओ। मैं कपड़े बदलकर मुख्यमन्त्रीजी से मिलने जाऊंगी।' कामज्योत्स्ना प्रतिउत्तर पाये बिना तुरन्त निवृत्तशाला की ओर चली गयी थी और वैभव पलंग पर ही पड़ा सोचता रहा कि अब उसे क्या करना चाहिए। वह अपने आप पर झुंझला पड़ा—अपने कृत्य पर भी। उसकी बाहों ने कामज्योत्स्ना को किस तरह कस दिया था। तब क्या हो गया था उसके मन-मस्तिष्क और तन पर?

नारी से दूर-दूर रहने वाला वैभव किस तरह नारी के नाजुक अंग-पाश में रम-रच गया था। माता-पिता के बलात जीवन के स्मरण ने उसे अपने कृत्य के हेय दृष्टिकोण पर झकझोर दिया था, कितनी नादानी थी उसकी! कामज्योत्स्ना को इन्कार कर रोकते हुए भी उसकी इच्छाशक्ति की मीमांसा नारी के कृत्य को उचित मान रही थी। फिर तो वह सम्पूर्ण काम-पुरुष बन गया था। सम्पूर्ण नैतिकता खोपड़ी-तंत्र से अदृश्य हो गयी थी और उसके स्थान पर थी—निरी मादकता, लबालब भरी मांसल देह की अहमियत और नियति की विडम्बना। कली से दूर-दूर पहाड़ों में गुंजन करने वाला भंवर प्रस्फुटित फूल पर तुरत-फुरत मंडराते हुए रसास्वादन करने लग गया था।

सिविल लाइन के कलक कुटीर निवास से जब कामज्योत्सना बाहर निकली तब उसके चेहरे पर पूर्ण सन्तुष्टि की भंगिमा स्पष्ट थी। मंत्री महोदया प्रदेश के मुख्यमंत्री से मिल, राज्य की माली हालत को सुधारने तथा केन्द्र ...

ओवर ड्राफ्ट को पूरा करने हेतु दो उपायों का प्रस्ताव किया था। प्रथम शराब बन्दी की नीति को बदलकर शराब आम आदमी के लिए खोल दी जाये। इसके पक्ष में तर्क यह था कि जहां इस नीति से राज्य सरकार को करोड़ों की आय होगी वहीं मानव के मौलिक अधिकारों की रक्षा के साथ राज्य सरकार के उदार दृष्टकोण का परिचायक भी होगी। द्वितीय फार्मूला था—राज्य सरकार द्वारा कृषि भूमि को रूपान्तरित करके निजी पट्टे जारी कर करोड़ों की आय तुरन्त प्राप्त कर लेना।

कामज्योत्सना द्वारा सुझाये गये दोनों प्रस्ताव मुख्यमंत्रीजी को आर्थिक सरक्षण के फार्मूलों की तरह सौ फीसदी भा गये लेकिन नीति में परिवर्तन सत्ता यों ही थोड़े कर देती है। प्रथम के पक्ष में मुख्यमंत्रीजी का कथन स्पष्ट था, 'कामज्योत्सनाजी, शराबबन्दी खोल देने से उन ठेकेदारों को तो असीमित लाभ होगा जो आजकल ठाले-बैठे शराबखोरी कर रहे है।'

'जी हां, वो तो है ही।' कामज्योत्सना ने सहमति व्यक्त की तो मुख्य मंत्री ने अपने मन की बात कह दी थी।

'क्यों न उनसे कुछ वसूला जाये। राज्य की आर्थिक स्थिति सुधारने के पूर्व हमारी वित्तीय आय तो बढ़नी ही चाहिए, तभी तो हम आलाकमान की दृष्टि में इक्कीसवी सदी के सुयोग्य मुख्यमंत्री होंगे।'

'वो व्यवस्था समझो हो गयी।' कामज्योत्सना ने राज्य के मुख्यमंत्री की ओर अपलक निहारते हुए कहा था। फिर वे दोनों सत्ता के सहभागी मुस्करा दिये थे।

'सच्च कामज्योत्सनाजी, आप मेरी कठिनाइयों का हल तुरन्त निकाल देती हैं। फिर कितना वसूल करने का मानस बनाया है?' मुख्यमंत्रीजी ने कामज्योत्सना की त्वरित पैनी दृष्टि पर अपनी मानसिकता का पर्दा डाल दिया पर कुशाग्र बुद्धिशीला मंत्री महोदया ने मुख्यमंत्री के प्रश्न को प्रश्न के अन्दाज में ही छोड़ दिया, 'मानस क्या बनाना है, लाखों की बात है। बोलो, कितने लाख?'

'यही कोई बीस-पच्चीस।' अपना दाहिना हाथ फैलाकर जब मुख्यमंत्री कह चुके तब कामज्योत्सना ने भी सहमति जाहिर की, 'बीस क्यों? सौदा पूरे पचीस पर ही करूंगी। दस आपको, पांच हमें तथा शेष दस पार्टी हाई

या आलाकमान हेतु। क्यों?' कामज्योत्सना द्वारा प्रस्तावित बंटवारे के स्पष्ट दृष्टिकोण की राज्य के मुख्यमंत्री ने प्रशंसा करते हुए सहमति व्यक्त की।

'वाह ! कामज्योत्सनाजी, बंटवारा भी खूब किया। मुझे मंजूर है।'

उसके बाद दोनों राजनेताओं में काफी देर तक शासनतंत्र तथा राजनैतिक घटनाचक्र के बारे में बातचीत होती रही थी, 'कामज्योत्सना, एक बात बतलाऊं। राधारमन पांड्या का कुछ न-कुछ करना ही होगा। उसकी हर बात में षड्यंत्र की बू आती है, क्यों?' मुख्यमंत्रीजी ने कैबीनेट मंत्री राधारमन पांड्या की बात छेड़ ही दी तो भला कामज्योत्सना चुप कहां रहने वाली थी, वह तो स्वयं राधारमन पांड्या से खफा थी सो वह गयी, 'आप ठीक कहते हैं। वह आपको हटाकर स्वयं मुख्यमंत्री बनना चाहता है और वह इतना निकृष्ट है कि घिनौनी-से-घिनौनी हरकत करने पर भी बाज नहीं आयेगा। जरा उस पर प्रतिबन्ध ही रखना।'

—'वो तो मैं रख ही रहा हूं परन्तु उसे राजनैतिक दृष्टि से कमजोर कैसे किया जा सकता है?' मुख्यमंत्री के प्रश्न का कामज्योत्सना ने उत्तर दिया, 'मुख्यमंत्रीजी, ज्यादा हाथ-पैर मारने लगे न तो मुझे खबर कर देना। आलाकमान की नजरों से ऐसा गिराऊंगी कि वह क्या याद रखेगा। अच्छा, अब मैं जाती हूं।'

फिर मुख्यमंत्रीजी कामज्योत्सना को कनक कुटीर के बाहर तक छोड़ने आये थे। वह अपनी कार में बैठ अर्थ-लाभ को अर्जित करने की स्वीकृति प्राप्त कर विदा ले चली आयी थी।

और फिर, दोपहर तीन बजे। निर्धारित समय पर शराब के सरगना सबरवाल का टेलीफोन आया था। कामज्योत्सना ने रकम पहुंचाने की सारी प्रक्रिया उसे समझा दी थी। उसी के अनुसार शराब के सरगना को बीस लाख कामज्योत्सना की डम्मी फर्म 'सुभाष एण्ड कम्पनी' में, दस लाख मुख्यमंत्री के ससुर की कम्पनी 'रानी झांसी प्राईवेट लिमिटेड' में, तथा शेष दस लाख पार्टी में चन्दे हेतु दिल्ली दरबार को नजर करने के लिए अमानत में रख देने के निर्देश मिले थे।

फिर अगले सप्ताह के अन्त तक शराबबन्दी हटा देने के राज्यादेश

री हो गये थे। चारों ओर शराब पीने वालों की खुशियों का ठिकाना ही न रहा था।

पहले दिन ही बगल में बोतल दबाये बहुतेरे लोग सड़कों पर झूमते देखे गये। राज्य की आय में वृद्धि होने लगी पार्टी को चन्दा मिल गया और अधीशों को व्यक्तिगत नजराना। जनता के मौलिक अधिकारों में समाये पीने के अधिकार की रक्षा हो गयी। कोई रोक-टोक नहीं, खूब पियो और जी भरकर जीओ।

मधुशाला की रौनक जो शराब-बन्दी के दौरान खत्म हो चुकी थी— एक बार फिर सत्ता की चौखट से उठ खड़ी हुई। दिन को होली और रात को दिवाली अपने-अपने यौवन पर रोज मुस्कराने लगी। लोग पीते, गाते, नाचते, आनन्द मनाते, गम गलत करते, बहकते लड़खड़ाते, गिरते और गन्दी नालियों को साफ करते नजर आते। गाढ़े पसीने की कमाई शराब की भेंट चढ़ने लग गयी थी।

राज्य सरकार की विभिन्न योजनाओं के अन्तर्गत बाटी जाने वाली अनुदान राशि शासन-तंत्र के विभिन्न पदों पर बंटने के बाद जो ग्रामीणों के पास पहुंचती, वह शराब की आय के रूप में फिर राज्य के पास पहुंच जाती, कितना स्पष्ट दृष्टिकोण है सत्ता द्वारा सहायता करने का और फिर वापस लेने का।

अनुदान लो या ऋण ले लो और शराब पीओ, खूब पीओ, गरीब बने रहो फिर सत्ताधीशों की ओर निहारो, वे फिर अनुदान देंगे और वोट लेंगे। सहानुभूति जाहिर करेंगे और मत प्राप्त करना चाहेंगे। जनता, उन से अनुदान ले ले और मौलिक अधिकारों की रक्षा करते हुए शराब पीये। वाह ? क्या दर्शन है—राजनीति का सत्ता के साथ।

ज्यों-ज्यों रात काली होती रही, प्रदेश की मंत्री महोदया का मन तन की कालिमा को मल-मलकर स्वच्छ कर देने हेतु आह्लादित होता रहा था। करवटें बदलते हुए तन का खिंचाव स्निग्ध-स्वामी की तरंगों के उतरते-चढ़ते ज्वार के साथ कामज्योत्सना के मन के स्त्री प्रवाह को गति देता रहा— बरसाती नदी की तीव्र धारा की तरह। मूसलाधार वर्षा हुई और नदी की धारा का प्रवाह तेज हो आया। काम के विखण्डन को तन की रगड़

"'और उसकी सुहागरात ! कामज्योत्सना ने कहा और कब भोगा सुहागरात का सुख ? वह तो पुरुष की बांहों में तपती दुपहर में ही बंधकर रह गयी थी। ब्रह्मदत्त गांधी ने अबोध कामना के काम को उम्र के बढ़ते हुए तप से तपाकर सुहाग का अर्थ समझ आने के पूर्व ही सुहागरात की मर्यादाओं को पंगु कर दिया था। 'कामना, इधर आओ मेरे पास।' और तब ब्रह्मदत्त गांधी ने सत्रह वर्षीय बाला का हाथ पकड़कर उसे अपने गोद में बिठा लिया था।

और सत्रह वर्ष की उम्र'''! सत्रह वर्ष की उम्र ही, वह भी तराशकर बनायी गयी युवती की, अपने आप में इतनी भावुक और निश्छल होती है कि वह पुरुष के काम को तुरन्त प्रश्रय दे देती है। तब कामना ने कहां ब्रह्मदत्त गांधी का विरोध किया था। और विरोध कर भी कैसे सकती थी जब कि वह ब्रह्मदत्त गांधी को एक आदर्श और सार्थक पुरुष मानती थी।

उम्र के इसी पड़ाव में नारी पुरुष को भगवान मान लेती है और यही भ्रम उसे ले डूबता है।

पर अब, जब कि कामज्योत्सना वैभव को अपने आप से जोड़कर सुहागरात की सुखद अनुभूतियों को सार्थक बना देने की व्यूह-रचना रच रही थी, उसके अंग की गणिका उसके साथ पूर्ण सहयोग करने लगी थी। कुछ पल सोच लेने के बाद महत्वपूर्ण निर्णय करने के पूर्व कामज्योत्सना ने दीवार पर टंगी 'क्वार्टस् घड़ी' की ओर देखा। घड़ी ने सुबह के चार बजाकर सत्ताईस मिनट बनाये थे। भास्कर के प्रकट होने में एक प्रहर बाकी था और कामज्योत्सना इस समय का सदुपयोग अपने दिल में कमाई महत्वपूर्ण देहस्तुति पर खर्च कर आनन्द से विभूषित हो जाना चाहती थी। फिर वह शर्मा न री, अपने निर्णय पर अडिग रह योग्य प्रशासक या भावुक निश्छल युवती की तरह राह पर निकल पड़ी थी।

स्वयं ड्राइव करती हुई उसकी सरकारी कार राह के मोड़ों को काटती हुई एक सकरी गली के बाहर खुलने चौक के एक किनारे पार्क हो गयी। स्वयं मुख्यमंत्री महोदया जल्दी-जल्दी गली के अन्दर घुस आयी थी। दरवाजे पर दस्तक दी उसने, पर अन्दर से कोई आवाज नहीं आयी। फिर कुछ अशुभ न हो, यह सोच वह घबरा गयी तो उसने दरवाजे को अपनी

हथेली में जोर की थाप दे मारी—तब ऊंघते हुए पुरुष की आवाज आयी, 'कौन ?'

'दरवाजा खोलो वैभव।' कामज्योत्सना की दबी आवाज उभरी पर नारी स्वर को वैभव पहचान नहीं सका था। वह उठा, दरवाजा खोल देने के पूर्व उसने एक बार फिर आगन्तुक को सम्बोधित किया, 'कौन हैं आप ?'

'मैं हूं—कामज्योत्सना।' मंत्री महोदया ने तुरत-फुरत अपना नाम कह डाला था पर वैभव के विस्मय का ठिकाना न रहा। सर्वप्रथम, उसने कुंडी खोल दरवाजा खोल दिया। कामज्योत्सना पलक झपकते ही अन्दर आ गयी थी। घबराहट को छिपा देने का प्रयत्न करते हुए उसने स्वयं दरवाजा बन्द कर कुंडी चढ़ा दी थी। अब वह वैभव के सम्मुख थी।

दिल में उमड़ रहे शब्द, जुबान की आवाज से रिश्ता तोड़ होंठों से गायब थे परन्तु आंखों की पुतलियों में जो निःशब्दों का अंबार गतिशील रहा था, वह वैभव की समझ से परे न था। इतनी रात गये मंत्री महोदया का इस तरह प्रकट हो जाना निश्चित रूप से वैभव के लिए कौतूहलपूर्ण विस्मय का कारण रहा, पर नारी के हसरत भरे रूप में संवरा हुआ कामज्योत्सना का रूप-लावण्य देख वह स्वयं सम्मोहित हो आया था।

उगते हुए प्रात ने अर्द्धरात्रि की कालिमा को हर लिया था। कामज्योत्सना के चेहरे पर प्रभात की सुखद शीतलता शालीनता की हदों में बंधी रही, वह आगे बढ़ी।

विभिन्न कला-कृतियों तथा रंग-बिरंगे अर्थपूर्ण और अर्थों से अलग-थलग चित्रांकन से विभिन्न समूहों में सजे-संवरे शयन-कक्ष की बिछी एकमात्र खटिया पर वह बैठ गयी थी। आंखों के डोरों ने पूरे कक्ष का सिंहावलोकन किया फिर वह उसी खटिया पर पसर गयी थी—निर्लज्ज, निःसंकोच, आवरण को अर्थशून्य कर।

वैभव कुछ देर तक आंगन में ही खड़ा रहा—अर्थ और भेद को लिए शून्य की ओर निहारता हुआ। जब शून्यता में चेतना का प्रवाह हुआ, वह जैसे संसार की माया में लौट आया हो। हिम्मत बटोरी, मन को दृढ़ किया और अपने एकमात्र कक्ष में प्रविष्ट हो आया था।

क्या प्रदेश की ऐश्वर्यशालिनी मंत्री महोदया अपने व्यक्तिगत सुख का आनन्द चित्रकार की तूलिका पर खिंचे चित्रांकन से प्राप्त कर रही थीं ? या अपनी देह के निर्विकार उन्मीलित अंगों को चित्रकार की समझ तक पहुंचाने की चेष्टा कर रही थीं ? जो भी हो वैभव की नजरें आंखें मूंदकर पगी हुई कामज्योत्स्ना के बदन पर तीव्र प्रहार करने लगी थीं या कुछ खोज रही थीं — नहाती हुई देह में से उन चिन्हों को जिन्हें पुरुष की कामुकता और अधिक तलाश करती है ।

कामज्योत्स्ना ने बन्द आंखें खोल वैभव को निहारा, फिर उसके चेहरे पर कई मीठी-मीठी मुस्कान उभर आयी थी । वह मुस्कुराहट इतनी वेगपूर्ण थी कि वैभव को इसकी चोट का आभास नहीं हुआ था और वह सार को पी गया था । कामज्योत्स्ना खटिया पर उठ बैठी तब कहीं उसकी जुबान को शब्द मिले थे मैं बहुत थक गयी थी सो आते ही पसर गयी । तुम्हें बुरा तो नहीं लगा न ?'

मंत्री महोदया के प्रश्न का जवाब भला वैभव ना में कैसे दे सकता था । पर हां वह देना भी उसे अच्छा नहीं लग रहा था । वह मूक ही खड़ा रहा था ।

'मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं मिला वैभव । क्या मैं बुरी औरत हूं ?' फ्फ्रा उठीं मंत्री महोदया । और वैभव को बोलना पड़ा—

'नहीं मंत्री महोदया, पर इतनी रात गये यहां आने का औचित्य जानना चाहता हूं ?'

'रात कहां है वैभव ? रात्रि के सन्नाटे और बढ़ते हुए अन्धकार को तो मैं पीछे छोड़ आयी हूं । अब तो प्रभात की सुखद शीतलता है । यहां आने का औचित्य, जहां तुम्हारे मन के सूर्य से प्रकाश पाना है वहीं तन के ताप से उष्णता भी । क्या तुम मेरे जीवन की अंधियारी रातों में सुहाग की सेज के सहभागी बनकर प्रति रात रोशन करने की क्षमता रखते हो ? सच्च, मेरी देह को तुम्हारे बदन की तीव्र उष्णता चाहिए । बदले में, मैं तुम्हें दूंगी— सामाजिक प्रतिष्ठा, धन-दौलत और पुरुष को नारी से जो-जो चाहिए, वह सब कुछ ।' कामज्योत्स्ना कहते-कहते भर आयी फिर वह रुक गयी । उसकी स्पष्टवादिता ने वैभव को एक बार फिर झकझोर दिया था ।

नारी किस पुरुष को कब गले लगा ले और कब कन्नी काट उसकी तरफ नजर भी नहीं उठाये, यह तथ्य आज भी गोपनीय है। वस्तुतः नारी की माया नारी ही जाने। कंचन-कामिनियों ने कितने ही ऋषि-मुनियों को रिझा-रिझाकर हर लिया था। अप्सराओं का यह जाल आदिकाल से है, पर कामज्योत्सना जिस शालीनता से पुरुष को पाने हेतु वैभव के समक्ष स्पष्ट प्रस्ताव रख देती थी वे अपने आपमें जितने बेमिसाल थे उतने ही कामान्ध भी। ना जोर जबरदस्ती, ना पद की गरिमा का महत्व।

क्या कामज्योत्सना को भाड़े के पुरुष नहीं मिल जाते···? पर नहीं, वह अमेरिका की स्वच्छन्द इकाइयों की तरह पुरुष वेश्याओं से अपने अंग-बदन को नुचवाना नहीं चाहती थी। वह चाहती थी—एक पुरुष हो, पूर्ण कामी और जिसका पौरुष निखरा-नवीनतम सौम्य हो, वैसा ही जैसा वह चाहती थी।

यही सब कुछ उसने वैभव के पुरुषार्थ में पाया था। तभी तो सारी की सारी मान-प्रतिष्ठा को दांव पर लगा, एक ओर धकेल, अपने उच्च पद की मर्यादाओं से विरक्त होकर वह रात्रि के घटते अंधकार में वैभव की दहलीज पर इसे भोगने आयी थी। तब वह कहां थी प्रदेश की महिमामयी वैभव-शालिनी मंत्री महोदया···?

वह तो नितांत निरी-नारी थी। निराश्रय-निर्गन्ध नारी, जो अपनी ही देह-वेदना की स्तुति में पुरुष को पाने को कृतसंकल्प थी—निरांतक।

और वैभव ! वह शान्त रहा। उसके मननशील चित्त को नारी-प्रस्ताव ने पुरुषत्व मे भरकर जिस तरह ललकारा था, वह उसकी समझ के काम को बढ़ा गया था। वैभव के सौम्य-सुशील संस्कारों को कामज्योत्सना के बद चार प्रवृत्ति ने घेरकर उसकी आंखों की पुतलियों को कामुकता की पापा से रिझाते हुए तन की तन्मयता से जोड़ दिया था, पर नारी के समर्थन शब्द नहीं थे। तथापि नयनों की पुतलियों का रुख, होठों और जुबान कृत्य नासिका का पैना प्रहार और भृकुटि की मंसना ने स्त्री-पुरुष की स्वा··· मन शास्त्र के काम-भोग का पुरजोर निःशब्द समर्थन किया था। यह सब रूप कुशला, पुरुष-पापिनी नारी जान गयी थी। हाथ बढ़ाकर कामज्योत्सना ने उद्वेलित हो आये काम-कुटिल को अन्तिम शब्द दे दिये, 'आगे बढ़ो वैभव,

ागर से उमड़े बादलों का रूप धारण कर इस अतृप्ता धरती पर बरस
डो। मेघों की गर्जन और चौंधियाती तड़ित धारा का प्रवाह देख पृथ्वी के
ापते शोलों में आग का सैलाब उमड़ रहा है और उष्णता, अपनी हदों को
ार कर रही है। बरस न पड़े तो धरा के अंगारे अकाल में परिवर्तित हो
ायेंगे। आओ वैभव आओ, करीब आओ। अरे, सट भी जाओ और अकाल
ी विभीषिका से पृथ्वी को मुक्त कर दो।' कहते-कहते ही मंत्री महोदया
ने वैभव का हाथ थाम उसे अपने साथ खटिया पर लिटा लिया था। फिर''',
फिर'''! वे फिरते रहे। मिलन की पराकाष्ठा सम्भोग की अनिवार्यता को
पा गयी थी। दोनों बदन तपकर ठंडे हो चुके थे। कब वस्त्र तन से अलग
हुए और कब पहन लिए गये, वैभव को ध्यान ही नहीं रहा था।

क्या कापुरुष, कायर को कापथ पर उतारकर कामान्ध हो आया था?
सत्य, सम्पूर्ण-सच न भी हो पर अब जब कि मांसल की उष्णता उतर चुकी
थी, कुंठाओं ने वैभव की थकान को बढ़ा दिया था। वह मुंह लटकाये खड़ा
रहा और बढ़ चुकी श्वास प्रक्रिया को रोक पाने की कोशिश करता रहा,
फिर वह स्वयं ग्लानि में डूब गया था।

कामज्योत्सना निश्चेष्ट भाव से आंखें मूंदे पड़ी रही—निर्विकार-
निर्वस्त्र। वैभव ने मंत्री महोदया की काया को ढकना चाहा, पर ऐसा
करने के पूर्व स्वच्छन्द नारी ने मुंदी आंखें खोलकर चिर-परिचित मुस्कान
अपने चेहरे पर बिखेर दी।

'वैभव, अथाह तपिश के बाद अल्पवृष्टि की सघन बूंदों ने मेरे तन की
उष्णता को थाम लिया है। इस कृत्य से मैं सन्तुष्ट हूं। तुम्हारी बांहों के
घेरे ने मेरे बदन को जिस सहजता से बांधे रखा, अपने आपमें बेमिसाल
हरकत थी। मैं तुम्हारे अहसान तले दब गयी हूं। बोलो वैभव, राज्यसत्ता
से तुम क्या चाहते हो? तुम्हारी चाहत को मैं अंजाम दूंगी।'

वैभव निरुत्तरित रहा। वह उठ खड़ी हुई, वस्त्र धारण करती हुई वह
फिर बोली, 'तुम्हें निरुत्तरित देखना मुझे रास नहीं आता। कुछ तो बोलो
वैभव, तुम्हारे चेहरे की सौम्यता में, मैं रस भर देना चाहती हूं। चाहती
हूं, तुम्हारा निर्विकार मन मेरे नारी-चित्रों के नये-नये आयामों को खोजता
रहे। मैं तुम्हें अपने अंगों से लिपटा-लिपटाकर महान चित्रकार बना देना

राजनैतिक दिशा पथ ने कामज्योत्स्ना को ऐसे ही अनेक सत्यों से साक्षात् करवाया था जिनका अन्तिम सत्य मानवता की सेवा करना था। सच और कैसे, किन अर्थों में, यह स्पष्ट न होते हुए भी निर्विकार थे। जैसे-जैसे वह बढ़ती, मानवता पीछे-पीछे चलती थी। वह राज्य की जनता के लिए सम्पूर्ण से बहुत कुछ करना चाहती थी। कई-कई योजनाएं बनवायी थी उसने, जनता में खुशहाली लाने के लिए। आलाकमान के सूत्रीय कार्य-क्रम के राज्य-संचालन का भार स्वयं कामज्योत्स्ना पर ही था। और वह इसे पूर्ण तन्मयता से मेहनत कर क्रियान्वित करवाती थी। उसी का प्रतिफल था कि उक्त कार्यक्रम के सफल संचालन में राज्य को प्रथम दर्जा मिला था।

कार्यालय की फाइलों को निबटाकर मंत्री महोदया सचिवालय की सीढ़ियों से नीचे उतर आयी थी। कार में प्रविष्ठ हुई और पी० ए० को 'रंगमहल' चलने का आदेश देकर बैठ गयी थी। पर ये क्या…? आज मंत्री महोदया के चेहरे से मुस्कराहट क्यों गायब है? मंत्री महोदया के चेहरे पर तनाव-शैथिल्य की रेखाएं स्पष्ट थी, गतिशील कार के उतरे शीशों में से आ रही हवा के झोंके भी उन्हें नहीं दबा पा रहे थे।

सचिवालय की फाइलों को निबटाते हुए उसे पुरानी फाइल मिल गयी थी, जिसे वह कई दिनों से खोजती रही पर मिल नहीं पा रही थी और अपने कार्यालय के दो क्लर्कों को वह निलम्बित भी कर चुकी थी।

राज्य की राजनीति का निचोड़ था इस फाइल में। 'राज्य की आर्थिक तथा वित्तीय स्थिति की संरचना' शीर्षक के अन्तर्गत इस फाइल के विभिन्न पन्ने प्रमुख राज्य विधायकों तथा विद्रोही मंत्रियों की कमजोर नसों को उजागर करने का विवरण देते थे, जिसे स्वयं [illegible] त्स्ना ने आलाकमान के निर्देशों के अनुरूप अन्य [illegible] विशेषज्ञों से सलाह कर तैयार किया था।

[illegible] र अब जबकि [illegible] में से कई पन्ने [illegible] शब्दों भरी [illegible] 'तुम [illegible] रही

सकते थे ? वह भी अब, जब कि इसी राजनैतिक मंडली को पोल आला-कमान तक पहुंचाने हेतु कामज्योत्स्ना साध्य-साहस जुटा रही थी। इस मंडली द्वारा फाइल के मुख्य-मुख्य पन्नों को फाड़कर टिप्पणी सहित लौटा देना कामज्योत्सना के लिये घातक कृत्य था। वह इन ध्वनियों से भयभीत हो आई थी। नारी का कम्पित हो जाना स्वाभाविक था।

पर वह तनाव को झेले कार की पिछली सीट पर बैठी विचार-मग्न थी। राजनैतिक स्तर पर इस चाण्डाल चौकड़ी से कैसे निबटा जाये ? फिर राधारमन पांड्या को मंत्रिमंडल से ही हटा दिये जाने की प्रतिघाती चाल-बाजियां वह सोच रही थी। तब उसका मस्तिष्क परेशानियों से भारी हो आया था।

'रंगमहल' जाने का उद्देश्य भी तनाव को कम कर देना ही था। कामज्योत्सना जब कभी अत्यधिक परेशान या तनावग्रस्त हो जाती तो वह सीधे अपनी अन्तरंग सखी 'कौशल कामिनी' द्वारा सचालित रंगमहल चली जाती और अपनी सखी की मधुर वाणी में कोई लोरी, गीत, गजल या भजन अवश्य सुनती और तन्मय हो जाती, फिर वह किसी-न-किसी सर्वाधिक उपयुक्त निर्णय पर स्वतः ही पहुंच जाती थी।

मंत्री महोदया की कार 'रंगमहल' के प्रवेश द्वार पर आकर खड़ी हुई तो कामज्योत्स्ना बाहर आयी और सीढ़ियां चढ़ने लगी थी। महिला द्वार-पाल ने उसका स्वागत किया फिर वह सीधे कौशल कामिनी के शयन-कक्ष में घुस आयी थी। कक्ष के बायी ओर सुसज्जित शृंगार टेबल पर लगे सम्पूर्ण आकारीय आइने के सम्मुख खड़ी 'कौशल कामिनी' अपने लम्बे-घने बालों को संवार रही थी। ज्यों ही दर्पण के प्रतिबिम्ब में कामज्योत्सना का आकार उभरा, कौशल कामिनी अपनी अन्तरंग सखी का स्वागत करने के लिए मुड़ गयी, 'आओ काम, अच्छा हुआ तुम्हें राज्य-सत्ता से अवकाश मिल गया और तुम आ गयी अन्यथा आज तो मैं स्वयं तुम्हारे निवास पहुंचने वाली थी।'

कौशल कामिनी मंत्री महोदया को 'काम' कहकर ही पुकारती थी जब कि कामज्योत्सना अपनी सखी को 'कौशल' कहकर सम्बोधित करती थी।

हास बनाने के लिए ही पैदा हुई हो। संघर्ष ही तो जीवन है, आशावादी दृष्टिकोण उसका धर्म और विश्वासपथ है। जीवन धर्म और पथ से तुम अगर घबरा गयी, निराश हो गयी या टूट गयी तो सत्ता में रहते हुए भी कायर कहलाओगी और यदि सत्ता से हट गयी तो इतिहास के पन्नों से भी हट जाओगी। मैं समझती हूं, तुम स्वयं इतिहास हो, तुम से ही इतिहास बनेगा। नहीं तो, मेरी तरह अथाह दौलत और वैभव में आराम की जिन्दगी जीने के बाद भी कोई लेखनी एक शब्द भी लिखने को प्रयुक्त नहीं होगी। उठो, और देखो अपने आप को—आईने के सम्मुख, तुम जनता पर राज करने के लिये पैदा हुई हो। तुम जनता की सेवा के लिये हिन्दुस्तान की धरती पर अवतरित हुई हो, तुम राज्यसत्ता से जुड़कर देश की एकता और अखंडता के लिये जिन्दा हो और तुम अमन और शान्ति के दुश्मनों से लड़ने के लिये, उन्हें नेस्तनाबूत कर देने के लिये उठ खड़ी हुई हो। क्या राजनैतिक प्रतिद्वन्द्वियों की धमकियों से इस हद तक डर जाओगी कि मौत से जूझने का साहस ही खत्म हो जाये। फिर गीता का ज्ञान क्या निरर्थक है ?' कहते-कहते कौशल कामिनी उत्साह से भर आयी थी और मंत्री महोदया उत्साह से उमड़ रहे ज्ञान को शान्तचित्त सुनती रही।

कौशल कामिनी के शब्दों से जैसे अलौकिक शक्ति उमड़ पड़ी थी और भयग्रस्त कामज्योत्सना बात के मर्म को जान गयी। फिर उसने अपने आक्रांत मन पर विजय पा ली थी और मस्तिष्क में समायी हीन कुंठाओं पर नव-चेतना अंगीकार हो आयी। फिर वह उठी और अपनी अन्तरंग सखी के सुहावने धारदार चेहरे को अपनी भरी-पूरी छातियों के स्नेहिल दबाव से आलिंगन कर उसके बालों को सहलाने लगी, फिर बोली, 'कौशल, तुम्हारे शब्दों ने मेरे निराश मन में नव-साहस को प्रस्फुटित किया है। अब मैं दुश्मनों का मुकाबला दूने वेग से कर सकूंगी।'

'सच।' कौशल कामिनी का चेहरा श्वेत गुलाब से लाल गुलाब हो आया। मेरी सखी राज्य की मुख्यमंत्री बने, मैं तो उस दिन का इन्तजार कर रही हूं।'

'मुख्यमंत्री! अरे उसमें क्या धरा है। राज्य की सीमित राजनीति को लांघकर मैं तो सम्पूर्ण देश की उच्च राजनीति से जुड़ना चाहती हूं। क्या

संगीत वीणा की तारों से निकले ध्वनित-प्रतिध्वनित सुरों से मर्यादित था वहीं वाणी की कर्कशता और माधुर्य गीता के निष्काम कर्म से बंधे छन्दों और कौशल कामिनी की उच्चारित-प्रतिउच्चारित लय से सन्तुलित था।

गीत की समाप्ति पर कामज्योत्सना पूर्ण तरोताजा हो चुकी थी। तनाव, घबराहट और भय की निराशावादी गुंजन मंत्री महोदया के मन-वेग से कोसों दूर जा चुकी थी। इसी का प्रतिफल था कि वह मंत्री राधा-रमन पांड्या को मंत्रिमंडल से येन-केन-प्रकारेण हटा देने का मानस बनाकर राजनैतिक दांव-पेंच तक तय कर चुकी थी।

साहित्य, संगीत और नाट्य ने इतिहास के पन्नों से अनहोनी के भ्रम को हमेशा सत्ता से उबारा है। वस्तुत: साहित्य समाज का दर्पण है। गीत-संगीत मनुष्य के दिलों में आत्म-बल पैदा करने की कसौटी है और नाट्य में मानवता को जाग्रत करने की शक्तिशाली गुंजन है तभी तो इतिहास के पन्नों पर इन तीनों विधाओं ने अपना स्थान बनाया है। सभ्यता और संस्कृति किसी-न-किसी रूप में इन विधाओं से अबाध रूप से जुड़ी है।

सितार निर्धारित स्थान पर रखकर कौशल कामिनी मंत्री-सखी की ओर बढ़ आयी। कामज्योत्सना ने अपनी अन्तरंग सखी की गायन-प्रतिभा की तह दिल से तारीफ करते हुए कहा, 'कौशल, तुम्हारी मधुर आवाज का जादू अमूल्य है। जब भी तुम कोई गीत, भजन या गजल सुनाती हो, मेरी सम्पूर्ण समस्याओं का निदान निकल आता है।'

'बस रहने दो। ज्यादा तारीफ करोगी तो लय को नजर लग जायेगी।' कौशल कामिनी यह मुस्कराकर कामज्योत्सना के पास बैठ गयी थी। फिर क्या था…? दोनों सखियां अपने-अपने जीवन की महत्त्वपूर्ण बातें एक दूसरे को कहने लगी थीं। वार्तालाप का दौर निर्बाध रूप से चल रहा था कि कामज्योत्सना ने कौशल कामिनी से पूछ ही लिया, 'क्या दर्शन-शास्त्र पढ़ने वाली युवतियां शादी के योग्य नहीं रह जाती?'

'ऐसा तो नहीं है।'

'तो फिर तुम शादी क्यों नहीं कर लेती, अपना घर बसा लो।' काम-ज्योत्सना ने अपनी सखी के व्यक्तिगत अन्तःकरण को कुरेद दिया था, पर कौशल कामिनी ने तुरन्त जवाब दे डाला था—

'काम, तुम राजा की मंत्री हो, मन-मन बताना। क्या तुम्हारे स्वयं के जीवन में शादी कर लेने का निर्णय अब से छिपी हुई मजबूरी नहीं था, और फिर, विवाह ने तुम्हारे व्यक्तिगत जीवन को कौन सा सुख दे दिया?' कौशल कामिनी ने उत्तर के बदले कामज्योत्सना के वैवाहिक जीवन को साक्षात् शास्त्र बनाते हुए प्रश्न कर दिया था। वैवाहिक काम की विमुखता ने कामज्योत्सना को स्वतः प्रमाद बना दिया। कुछ क्षण रुक कौशल कामिनी की आंखों में झांकते हुए कामज्योत्सना ने कहा, 'जो भी हो कौशल, विवाह सामाजिक मर्यादा है। क्या तुम ऐसा नहीं मानती?'

'मान लो, मानती हूं। पर क्या ऐसा आडम्बर करने से सामाजिक मर्यादा को पानी मिल जायेगा? मैं सोचती हूं झूठी मर्यादा निभाने से जीवन का उद्देश्य ही विफल हो जायेगा।'

कामज्योत्सना अपनी सखी के जवाब को परम्परा से जोड़ना चाहती थी, वही कौशल कामिनी अपने दार्शनिक अंदाज को तर्क दे रही थी। फिर मंत्री महोदया ने कहा, 'देखो कौशल, तुम्हारे तर्क के सामने मैं बौनी हूं तथापि हम सामाजिक प्राणी हैं, व्यवस्था के नाते खोल या प्रतिबन्ध का होना अनिवार्य है। क्या तुम मां होने का सुख नहीं भोगना चाहती? यदि हां, तो पति की अनिवार्यता से कैसे विमुख हो सकती हो?'

'मैं तुम्हारी बात से सहमत हूं। तथापि काम, मैं तुम्हारी तरह दोहरा जीवन नहीं जी सकूंगी। कौशल कामिनी ने अपने अन्तःकरण की सच्चाई को कामज्योत्सना के दोहरे मानदण्ड के सामने रख दिया था। कामज्योत्सना इस बार निरुत्तर रही तो कौशल कामिनी ने फिर कहा, 'देह को काम चाहिए और मन को काम की सन्तुष्टि। इन दोनों को मैं वक्त जरूरत भोगती रही हूं, परन्तु पति की उपस्थिति में पर-पुरुष को आमंत्रित कर निर्लज्ज नारी का खोखला जीवन जीना पसन्द नहीं कर सकूंगी, जैसा कि तुम आसानी से कर रही हो।'

व्यक्तिगत जीवन पर कैसा तीव्र प्रहार कर दिया था कौशल कामिनी ने। परन्तु कामज्योत्सना शांत रही। भूल उसकी ही थी कि वह वैभव से अपने सम्बन्धों का कच्चा-चिट्ठा, गूढ़-गुप्त बातें अपनी सखी कौशल कामिनी के सामने खोलती रही थी और एक दिन तो कह दिया था,

'कौशल प्रकाश की गुप्त दीवानगी से वैभव की बातों के घेरे में बंध कर जिस काम को भोगकर मुझे संतुष्टि हुई है वह पौरुष की बेमिसाल हरकत थी। मरे हां मैं मुझे उनसे मिलवाऊंगी। पर डरती हूं — हां कहीं उस पर डोरे न डाल देना, मम्मी।'

हंसी-खुशी कही गयी अपने जीवन की अन्दरूनी गुप्त बातें, जब स्वयं अपनों द्वारा ही मजाक में कह दी जायें तब बुरी लगना स्वाभाविक है परन्तु मंत्री महोदया उसे पचा गयी थी। वह फिर उठ खड़ी हुई तो कौशल कामिनी ने कामज्योत्सना का हाथ पकड़कर पुनः बैठाते हुए कहा 'मेरी बात का बुरा न मानना। जब भी शादी की बात होती है, मैं शास्त्रीय दर्शन की मर्यादाओं में उलझ जाती हूं। पर-स्त्री गमन हो या पर-पुरुष, दोनों को मैं चरित्र हनन की पराकाष्ठा मानती हूं और ये पाप है।' बात को समझने के अंदाज से कामज्योत्सना ने पूछ ही लिया 'तो देह के काम का सिद्धान्त निरर्थक है?'

'नहीं, काम जीवन की अनिवार्यता है। काम को देह से निकाल दिया जाये तो जीवन का अर्थ ही क्या रह जायेगा?'

'तब क्या तुम एक पुरुष और एक नारी के दाम्पत्य जीवन के काम को सत्य मानती हो?' मंत्री महोदया ने प्रश्न करते हुए कौशल कामिनी के नयनों में झांका, जहां उसके काम का दर्शन नृत्य कर रहा था। उसने जवाब दिया, 'हां'।

'फिर तुम दाम्पत्य जीवन जीने के लिए तैयार क्यों नहीं हो पाती?' दुबारा वही प्रश्न घूम-फिरकर कामज्योत्सना की जुबान से निकला था जो वार्तालाप का मूल प्रश्न था। इस बार कौशल कामिनी ने औचित्य सिद्ध करते हुए स्पष्ट जवाब दे दिया था—

'मैं जानती हूं, मेरी देह को एक पुरुष के काम से संतुष्टि नहीं मिलेगी। फिर एक ही पुरुष के दाम्पत्य जीवन में बंधकर काम की लाचारी को मैं बर्दाश्त नहीं करना चाहती। अविवाहिता किसी भी पुरुष के पौरुष में समाये काम को आमंत्रित कर सकती है। प्रतिबन्ध को अपनाकर उसे फिर तोड़ देना मुझे स्वीकार्य नहीं होता।' कामज्योत्सना संतुष्ट नहीं हुई परन्तु उसने विषय को आगे बढ़ाना उचित नहीं समझा था। वह फिर उठ खड़ी

भिजवाया था, साथ ही मुख्यमंत्री ने टेलीफोन भी करवा दिया कि नियाजी आलाकमान के विशेष दूत के रूप में व्यक्तिगत सूचना लेकर अभी-अभी आपके निवास पहुंच रहे हैं, निर्देशों की तुरन्त पालना करने के आदेश प्राप्त हुए हैं। समझ गये न आप।

और तब मोहम्मद करीम नियाजी ने बड़ी कुशलता से राजनैतिक घटनाचक्र को समझाते हुए यह आश्वासन देकर कि आलाकमान मन्त्रियों की निष्ठा जानने को सर्वेक्षण कर रहा है और त्यागपत्र औपचारिकता है, स्वीकार नहीं किये जायेंगे! मंत्री राधारमन पांड्या से आसानी से त्यागपत्र प्राप्त कर लिया था। पर यह झूठा आश्वासन था। असत्य था जिसे मंत्री राधारमन पांड्या समझ नहीं पाया था।

राजनीति या कूटनीति में कुशलता का पूर्ण ध्यान रखा जाना अनिवार्य है तभी तो नीति-कुशल राजनीतिज्ञ की पहचान होती है। कामज्योत्सना इसी कुशलता को बनाये हुए थी। यही उसकी विजय का कारण थी।

अगले दिन जब राधारमन पांड्या का त्यागपत्र पहली नजर में स्वीकार कर लिया गया, तब कहीं जाकर उसे सम्पूर्ण राजनैतिक षड्यन्त्र का पता लगा था। पर, तब तक बहुत देर हो चुकी थी। हाथ-पैर मारने या सिफारिश या लेन-देन का वक्त भी जाता रहा था। वह आग-बबूला होने के अतिरिक्त कर भी क्या सकता था? एक निश्चय, कि वह अपनी राजनैतिक शिकस्त और असहनीय कृत्य का बदला कामज्योत्सना से अवश्य लेगा। और उसी दिन से वह मंत्री महोदया के पीछे पड़ गया था पर उसकी स्थिति अब पूर्व जैसी नहीं रही थी।

राधारमन पांड्या को मंत्रीमंडल से त्यागपत्र के मार्फत निष्कासित किया जाना इस सहजता से कुशलतापूर्वक हुआ था कि किसी को कोई फर्क नहीं पड़ा और राज्य की राजनीति निर्बाध रूप से चलती रही, पर काम-ज्योत्सना की राजनीति का पलड़ा भारी अवश्य दिखलायी देने लगा था। कारण, उसकी नियोजित चालें थी। हर मोहरे को शतरंज के कुशल खिलाड़ी की तरह वह सही स्थान पर बिठाना जानती थी। इसी कारण राधारमन पांड्या की शिकस्त आसान हुई थी। मंत्रीमंडल से त्यागपत्र स्वीकार कर लिए जाने के बाद कामज्योत्सना ने मुख्यमंत्री से कहा था, 'देखा मुख्यमंत्रीजी

भिजवाया था, साथ ही मुख्यमंत्री से टेलीफोन भी करवा दिया कि नियाजी आलाकमान के विशेष दूत के रूप में व्यक्तिगत सूचना लेकर अभी-अभी आपके निवास पहुंच रहे हैं, निर्देशों की तुरन्त पालना करने के आदेश प्राप्त हुए हैं। समझ गये न आप।

और तब मोहम्मद करीम नियाजी ने बड़ी कुशलता से राजनैतिक षड़यन्त्र को समझाते हुए यह आश्वासन देकर कि आलाकमान मंत्रियों की निष्ठा जानने को सर्वेक्षण कर रहा है और त्यागपत्र औपचारिकता है, स्वीकार नहीं किये जायेंगे ! मंत्री राधारमन पांड्या से आसानी से त्यागपत्र प्राप्त कर लिया था। पर यह झूठा आश्वासन था। असत्य था जिसे मंत्री राधारमन पांड्या समझ नहीं पाया था।

राजनीति या कूटनीति में कुशलता का पूर्ण ध्यान रखा जाना अनिवार्य है तभी तो नीति-कुशल राजनीतिज्ञ की पहचान होती है। कामज्योत्सना इसी कुशलता को बनाये हुए थी। यही उसकी विजय का कारण थी।

अगले दिन जब राधारमन पांड्या का त्यागपत्र पहली नजर में स्वीकार कर लिया गया, तब कहीं जाकर उसे सम्पूर्ण राजनैतिक षड्यन्त्र का पता लगा था। पर, तब तक बहुत देर हो चुकी थी। हाथ-पैर मारने या सिफारिश या लेन-देन का वक्त भी जाता रहा था। वह आग-बबूला होने के अतिरिक्त कर भी क्या सकता था ? एक निश्चय, कि वह अपनी राजनैतिक हिमाकत और असहनीय कृत्य का बदला कामज्योत्सना से अवश्य लेगा। और उसी दिन से वह मंत्री महोदया के पीछे पड़ गया था पर उसकी स्थिति पहले जैसी नहीं रही थी।

राधारमन पाड्या को मंत्रीमंडल से त्यागपत्र के मार्फत निष्कासित किया जाना इस सहजता से कुशलतापूर्वक हुआ था कि किसी को कोई फर्क नहीं पड़ा और राज्य की राजनीति निर्बाध रूप से चलती रही, पर काम-ज्योत्सना की राजनीति का पलड़ा भारी अवश्य दिखलायी देने लगा था। कारण, उसकी नियोजित चालें थी। हर मोहरे को शतरंज के कुशल खिलाड़ी की तरह वह सही स्थान पर बिठाना जानती थी। इसी कारण राधारमन पांड्या को शिकस्त आसान हुई थी। मंत्रीमंडल से त्यागपत्र स्वीकार कर लिए जाने के बाद कामज्योत्सना ने मुख्यमंत्री से कहा था, 'देखा मुख्यमंत्रीजी

'जी हां, मेम साहिबा। मैं अभी उबटन तैयार कर आयी।' और मंथरा रसोई में चली गयी थी। उसने मक्खन, आटे, हल्दी और सुगन्धित सामान का मिश्रण तैयार किया फिर एक मर्तबान में डाल पलेथ कर वह मंत्री महोदया के शयन-कक्ष में ले आयी थी।

सामने अलौकिक दृश्य था। बेचारी मंथरा की आंखें यह देख फटी की फटी रह गयी कि औंधी लेटी कामज्योत्सना के निरे बदन का उत्तरार्द्ध-भाग अंगारे-सा प्रज्वलित हो रहा था। और उभरे हुए नितंबों को धवल-मक्खन-सनी चमड़ी का आवरण ढके था, जो मांस के लोथड़ों को चर्म सौन्दर्य में परिवर्तित कर मन-चक्षुओं को चौंधिया रहा था। मंथरा कुछ क्षण अवाक् देखती रही फिर निकट चली आयी।

मर्तबान पलंग के निकट लगी लघु टेबिल पर वह रख ही रही थी कि कामज्योत्सना की आवाज उभरी, 'मंथरा, पहले दरवाजे की चिटखनी लगा दो, फिर सम्पूर्ण पीठ पर अंगुलियों की पोरों से छोटी-छोटी क्यारियां बनाकर मर्तबान के लेप से हौले-हौले गूथती हुई सम्पूर्ण मालिश कर दो।'

'जी मेम साहिबा।' मंथरा ने आदेश को पालना कर चिटखनी चढ़ा दी फिर पलंग के निकट आती हुई अपने शब्दों को नहीं रोक पायी। वह बोली, 'मंत्री महोदयाजी, वह देने की गुस्ताखी माफ हो। आपकी देह के उत्तरार्द्ध भाग के सौन्दर्य का बोध छिटक आयी चांदनी का-सा धवल है। उस पर कबूतरी जोड़े की उपस्थिति ने चक्षुओं को हर लिया है। मैं मंथरा, नारी न होती तो इस हाहाकार भरे तन सौन्दर्य को पा लेने की इच्छा संवरण कैसे कर पाती? सच्च मेम साहिबा, आपकी देह में नारी सौन्दर्य का सुलगता हुआ अंगार है जो चर्म की ज्योत्सना में से छिटककर संसार की माया को प्रताड़ित कर रहा है।' मंथरा कहकर शान्त हो ली। पर कामज्योत्सना ने करवट नहीं बदली वह औंधी पड़ी सौन्दर्य के सागर में तैर आयी, 'नारी सौन्दर्य के इसी अंगार को मैं अपनी देह पर झेलकर तपती रही हूं। तभी तो तुम्हें आज लेप-मर्दन करने हेतु आमन्त्रित कर बैठी हूं। लेप जरा हौले-हौले करना।'

मंथरा ने कांच के मर्तबान में हाथ डालकर अंगुलियों से उसे फेंटा फिर पोरों पर लगे लेप को कामज्योत्सना के कंचन-सी पीठ पर छिटककर उन्हीं

अंगुलियों की पोरों का दबाव द्वारा कंचन-गामिनी के बदन पर क्यारियां बनाने लगी थी। जब हाथ की अंगुलियों ने पीठ और कमर पर क्यारियां बन चुकी तो मंथरा का हाथ नितंबों की ओर बढ़ते हुए एकाएक रुक गया था।

'रुक क्यों गयी मंथरा, मैं तो नख से शिख तक निरी नारी हूं। इस तरह की क्यारियां कूल्हे, पिंडलियों और एड़ी तक बना डालो।' मंत्री महोदया के आग्रह को भला घर की आया कैसे टाल सकती थी।

मंथरा की पलकें नितंबों के सुदृढ़ रूप और केले के पेड़ के समान सुन्दर जांघों और पिंडलियों की लावण्यता देख झप-झपा आयीं। और वह अपनी थूक निगलती हुई अंगुलियों की पोरों को नितंबों में गड़ाती चली गयी।

जहां-जहां पोरों का दबाव पड़ता, वहां-वहां लाल अणुओं का रंग उभर आता। और मंत्री महोदया की श्वासें तेज हो जाती। और वह सिरहाने पर पड़े तकिये को दोनों हाथों से दबाकर कभी-कभी अपने दांत भी गड़ा देती। जिसे देख मंथरा स्वयं विचलित होये जा रही थी।

परन्तु वह नारी थी। उसका विचलन केवल मानसिक था। शारीरिक दृष्टिकोण पर प्रश्नचिह्न था। मंथरा के दोनों हाथों की अंगुलियां अंगुष्ठ के साथ अनवरत चल रही थी, जो नारी की देह के उत्तरार्द्ध भाग में कंपन पैदा कर स्वयं उसमें जुड़ रही थी। और कामज्योत्सना का सम्पूर्ण पिछला हिस्सा कम्पन से युक्त विद्युत तरंग-सा गतिशील हो आया था।

नारी की गति नारी ही जाने, परन्तु पल-पल बढ़ती हुई काम की शक्तिशाली गुंजन में मंथरा यह भूल गयी कि वह आया है और कामज्योत्सना मालकिन है, मंत्री महोदया है।

'मंथरा, क्यारियां बन चुकीं। अब इसे गूंथा जाना है। क्यों तुम मेरे शरीर के उत्तरार्द्ध भाग को अपनी श्यामल देह के पूर्वार्द्ध भाग से घर्षित कर गूंथ सकती हो? यदि हां, तो तुरन्त कर डालो और नहीं तो चिटखनी खोलकर नौ दो ग्यारह हो जाओ।'

मंथरा ने प्रतिउत्तर के बदले अपनी देह पर लिपटे सांसारिक आवरणों को एक-एक कर उतार फेंका। फिर मर्तबान को उठाकर लेप को काम-ज्योत्सना के कूल्हों पर एक चौथाई उड़ेल दिया और चौथाई लेप को दाहिने हाथ पर लेकर अपने दोनों वक्षों पर थपथपा दिया, फिर वह पलंग पर चढ़

गयी थी। और अपने पूर्वार्द्ध भाग को मंत्री महोदया की देह के उत्तरार्द्ध भाग पर विद्युत घर्षण की भांति रगड़ने लगी थी।

यही था नारी से नारी का देह संसर्ग और मथरा का परिश्रम···? कामज्योत्सना के अंग को सौन्दर्य रक्तिम स्वर्ण कलश-सा रूप प्रदान कर रहा था। काम योग का कर्म स्पष्ट था पर पूर्णता का दर्शन तर्क से परे था। जो भी हो, यह दृश्य चन्द क्षणों के बाद मंदिम हो गया तो कामज्योत्सना ने हांफती हुई मंथरा को कहा, 'अब बस भी करो मंथरा, लेप को अर्थ मिल गया है।'

मंथरा पलंग से नीचे उतर आयी और अगले आदेश की प्रतीक्षा करने लगी, यह सोच कि मंत्री महोदया अब पूर्वार्द्ध भाग पर लेप करने को कहकर करवट बदलेंगी। परन्तु कामज्योत्सना ने न तो करवट बदली और न ही अपने बदन के पूर्वार्द्ध भाग की स्वर्ण-मंडित देह पर दमकते दोनों हीरो का प्रदर्शन किया।

वह औंधी पड़ी-पड़ी बोली, अब तुम जाओ मथरा, 'पूर्वार्द्ध भाग पर मैं स्वयं लेप कर लूंगी।'

मथरा ने अपने कपड़े पहन लिए पर कामज्योत्सना के सुडौल पूर्वार्द्ध को देख लेने की लालसा को वह छोड़ नहीं पायी। एक कदम आगे बढ़कर बोली मथरा, 'मेम साहिबा आपके जिस्म को स्वयं परवरदिगार ने अपने हाथों बनाया। जब उत्तरार्द्ध भाग ही इतना कमसिन, सुडौल व लावण्य युक्त है तो पूर्वार्द्ध की कल्पना करते हुए साक्षात् कामदेवी की स्तुति स्मरण हो आती है। आपके तराशे हुए शारीरिक सौष्ठवों में जो रस का भंडार अमृत लिए हुए है, वह लाखों-लाखों मे एक है। मैं आपकी देह के पूर्वार्द्ध को देख लेने की इच्छा छोड़ नहीं पा रही हूं। क्या आप करवट बदलकर साक्षात नारीश्वर ईश्वरीय रूप के दर्शन कर लेने की छूट मुझ रूप-हीना को दे सकेंगी आपका बड़ा उपकार होगा।'

अपनी प्रशंसा को सुन भला कौन नारी हर्षित नहीं होगी। रूपगर्विणी कामज्योत्सना तब साक्षात् कामदेवी बन आई, पर मस्तिष्क में समाये 'वैभव' के कामयोगी रूप की उपस्थिति ने रूपहीना नारी मंथरा के समक्ष करवट बदल लेने से उसे रोक दिया। वह औंधी पड़ी-पड़ी ही अंगार हो

थी। यह ठहराव सौंदर्य के सम्मुख सौंदर्य के लिए, सौंदर्य को सौंदर्यता द्वारा निहारना ही नहीं था बल्कि धर्म-समाज के मायाविक रूप को मानव द्वारा उत्पन्न विचार-मनन से जोड़ना था। कामज्योत्सना के सम्मोहन में बुद्धि-कौशल का यह जुड़ाव अदभुत था कि यह तन, मन और धन के सम्मिलित अर्थ, देह-वंदना का प्रयोजना बन गया था।

राजनैतिक सत्ता ने सर्वप्रथम उसे अर्थ-तन्त्र से जोड़ा, अर्थ ने मन चंचलता की हदों को बांधकर तन के काम-सौन्दर्य को निखारा और तब इनके मिश्रित उत्थान ने वैभव की अनिवार्यता को कामज्योत्सना के लिए निर्णित कर दिया था।

आत्म-निरीक्षण कर मंत्री महोदया ने अपने देह पर चढ़ी सौन्दर्य-रस की परत को वस्त्रों के भीतर छिपा देना चाहा, तब उसने कपड़े धारण कर रूप-सौन्दर्य के काम को पवित्रता के खोल में ढक दिया था। अब वह साक्षात देवी तुल्य मर्यादित लग रही थी।

जरा देखो तो···पतिव्रता काम-कुंज पवित्रित हो आयी···! मर्यादा का आवरण मानव को कितना आराध्य बना डालता है···? कामज्योत्सना के साक्षात देवी तुल्य मर्यादित रूप-ग्रहों ने उसे जनता के समक्ष पूजनीय ठहरा दिया था और वे जय-जयकार कर स्वयं अपने को धन्य अनुभव करते। सत्ता से जुड़े-जकड़े हुए प्रश्नों का सहज-शालीन जवाब देकर मुस्करा देना उसकी खूबी थी और इन्हीं मर्यादाओं के सम्मोहन ने उसे योग्य राज-नीतिज्ञ ठहराकर शासन तंत्र की सत्ता से जोड़ दिया था।

वह दरवाजे की ओर बढ़ी, फिर उसने मन्थरा को आवाज लगायी, 'मथरा, जरा जल्दी आना।' आया दौड़ी-दौड़ी आयी तो मंत्री महोदया ने प्रश्न किया, 'नारायण अब तक क्यों नहीं आया, क्या बात है ?'

'मुझे क्षमा करें। अभी-अभी खबर मिली है कि उनकी धर्मपत्नी का स्वर्गवास हो गया है।' दु:खद खबर सुन मंत्री महोदया का चेहरा कुछ क्षण उदास हो आया, 'ओ हो !'

और संवेदना समाप्त···! तत्क्षण ही मंत्री महोदया की भृकुटी तन गयी, वह मथरा पर झुंझला पड़ी, 'मथरा, मनहूस खबर सुनाने से पहले जरा सोच लिया कर। अभी मैं शकुन भरे काम के लिए जा रही थी, सारा

मूड बिगाड़कर रख दिया। तुम्हें पता है, हजारों-हजारों की तादात में जनता हमें सुनने को खड़ी है। अब नारायण की अनुपस्थिति में···'अब तू यहां क्यों खड़ी है, जा फूट यहां से।' वह क्रोधित हो आयी फिर अपने आप को सभाल कर ड्राइंग रूम में प्रविष्ट हुई और सोफे पर विचारमग्न बैठ गयी। 'नारायण की बीबी को भी आज ही मरना था। बस लाख कहा था भाषण के लिए तैयार कर जाना, पर साला प्रातःकाल का वादा कर चला गया। उस क्षेत्र की सर्वे रिपोर्ट भी नहीं है, उफ! अब क्या होगा? जाना तो है ही, भाषण भी मार ही लूंगी। परन्तु निजी सचिव के अभाव में अकेले एक सौ इक्यावन किलोमीटर का सफर कितना दुष्कर होगा। ऊपर से जग-हसाई और फि मंत्री महोदया के साथ पी० ए० तक नहीं, अकेली आ गयी।'

सब अपनी-अपनी मजबूरी से घिरे हैं? किसी को किसी से लेना-देना नहीं। पत्नी का बिछुड़ना नारायण के लिए कितना दुखमय होगा, पर इस दुखद वेला मे भी मंत्री महोदया को लेना-देना नहीं था, कोई सरोकार नहीं···? वह महज अपने कार्यक्रम की सफलता चाहती थी। कहां थी श्रद्धांजली···, कहां थी सहानुभूति? कहां है परस्पर दुखद वेला में सहयोग की भावना! बिरह का दुख वियोगी ही जाने, परन्तु अपनत्व का बोध उसे दुख सहने की सामर्थ्य प्रदान करता है।

मंत्री महोदया का यह नैतिक कर्तव्य नहीं था कि वह इस अपूरित दुःखद घड़ी में अपने पी० ए० के निवास पर जाती, संवेदना प्रकट करती और श्रद्धांजली अर्पित करती। पर क्यों करे? मंत्री महोदया के समक्ष पी० ए० की औकात ही क्या थी? उसकी पत्नी तो क्या, वह स्वयं भी मर जाये तो उसके रिश्तेदार ही दफनायेंगे।

परन्तु आलाकमान को छींक भी आ जाती तो वह समस्त कार्यक्रम रद्द कर दिल्ली जाती। मिलना हो या न हो, परन्तु स्वास्थ्यलाभ की कामना करती हुई बयान प्रकाशित करवा देती, मृत्यु की तो बात ही और है।

जो हो कामज्योत्सना को तो दर्शन देने जनता के समक्ष पहुंचना ही था, सो उसने नारायण को कोसना और उस पर सोचना बन्द कर दिया। मस्तिष्क की तहों से उसने जैसे नारायण का नाम ही बाहर छिटक दिया

फिर वाशबेसिन पर जाकर आंखों पर पानी के छींटे दे डाले, चेहरे को नेपकिन से पोंछ दिया और शयनकक्ष में आकर सौन्दर्य-शृंगार दर्पण के सामने खड़ी हो गयी थी।

चेहरे की मायावी सरचना करते हुए उसे 'वैभव' का खयाल हो आया, फिर एक विचार कौंधा—क्यों न वैभव को ही साथ ले जाया जाये। मस्तिष्क से उभरी बात मंत्री महोदया के मन को अच्छी लगी और मा गयी। फिर क्या था सम्पूर्ण चेहरे को सजा-संवारकर माथे पर लाल बिन्दी लगा, वह शयनकक्ष से बाहर निकली और बरामदा पार करती हुई वह चक्र के कमरे में घुस आयी थी।

और चक्र···, अपने ट्यूटर 'वैभव' से ज्ञान अर्जित कर रहा था। ज्ञान का विषय था—'महात्मा गांधी'। राष्ट्रपिता के जीवन और दर्शन का सार संक्षिप्त वैभव अपने शिष्य चक्र को बतलाते हुए कहते गये, 'चक्र, राष्ट्रपिता महात्मा गांधी एक महान विभु थे। महामानव। उन्होंने हमारे देश की जर खरीद गुलामी को अहिंसक-रचनात्मक, सार्वभौमिक-सार्वजनिक आन्दोलनों के माध्यम से समाप्त करने के महान मनोबल को प्रेरित करने की प्रेरणा प्रदान की। आजादी की व्यूहरचना को उन्होंने आम आदमी के भावप्रवण अन्तःकरण से जोड दिया, जो अस्त्र-शस्त्रों के माध्यम से नहीं बल्कि सरकार की निरंकुश तानाशाही के विरुद्ध असहयोगपूर्ण वातावरण तैयार कर की गयी। गांधीजी के विलक्षण आत्मबल के समक्ष अंग्रेजी विदेशी सरकार को झुकना पड़ा था।

महात्मा गांधी का जीवन सादा और विचार उच्च थे, मर्यादित थे और आदर्श थे। उन्हें सत्य से प्यार था, वे स्वतन्त्र भारत के जन्मदाता थे और इसलिए वे राष्ट्रपिता कहलाये। उन्होंने लंगोटी धारण कर भारत की असहाय और गरीब जनता के साथ अपनी जिन्दगी को जोड़ा। अमीर और गरीब की खाई को पाट देना उनका स्वप्न था। हरिजनों को गले लगाकर, उन्हें उनका के अपना प्रथम कर्म-कर्तव्य समझते थे, उन्हें अछूतों से प्यार था।

और धर्म को उन्होंने 'गीता' से उठाया था। वे गीता को एक सार्वभौमिक ग्रन्थ मानते थे। वे कहते—जब-जब मैं निराश होता हूं अन्धकार में

भटकने लगता हूं और कोई रास्ता दिखलायी नही देता, तब मैं गीता के श्लोकों का स्मरण करता हूं और तत्क्षण मुझे अन्धेरे मे प्रकाश की किरणें दिखलायी दे जाती हैं और मैं प्रकाश को पा लेता हूं। सारी गुत्थियां निर्णित हो जाती हैं।'

बेटे चक्र, गांधीजी कर्मशील ही नही थे, वे निष्काम कर्म के हिमायती थे, कर्म-भक्ति और ज्ञान का संगम। निराश हो जाना उनके स्वभाव मे नही था। वे कर्म के साथ भक्ति की अनिवार्यता को मानते थे और कर्मशील भक्ति इंसान को सहनशील, शान्तिप्रिय बनाती है तथा कामनारहित निष्काम कर्म उसमें आत्मबल का संचार करता है···।

पढ़ते-पढ़ते जब वैभव का ध्यान द्वार पर खड़ी कामज्योत्सना पर गया तब उसकी जुबान के शब्द लड़खड़ाने के पूर्व ही निःशब्द हो गये। वह उठ खड़ा हुआ तो मंत्री महोदया उसके पास आयी और अपने पुत्र की ओर मुखातिब होकर बोली, 'कैसे हो बेटा?' मां ने बेटे से ऐसे पूछा जैसे वह कई दिनों बाद मिली हो,—राजनीतिज्ञो को अपनी सन्तति से वार्ता का वक्त ही कहां मिलता है?

'अच्छा हूं मम्मी। मेरी परीक्षाए तीन दिनों बाद समाप्त हो जायेंगी। आबू पर्वत चलने की तैयारी···।' किशोर उम्र में घूमने की मनःस्थिति कितनी स्पष्ट होती है परन्तु चक्र की बात कामज्योत्सना ने काट दी, 'बेटे चक्रक्या करें, यूथ कांफ्रेस का कार्यक्रम निरस्त हो गया है। सम्भवतः चुना घोषित हो जायेंगे, तो घूमने चले चलना···।' वह रुक गयी तो चक्र के चेह की त्यौरी चढ़ गयी, 'हम आपसे बात नही करेंगे मम्मी, हर बार आप कोई-न-कोई बहाना निकाल लेती हैं।'

'सॉरी-सॉरी', कहती हुई कामज्योत्सना ने अपने बेटे को बांहों में भर लेना चाहा, पर चक्र भागकर दूर जा खड़ा हुआ था। फिर हारकर मंत्री महोदया ने वैभव की ओर निहारा, जो निश्चेष्ट भाव से खड़ा था।

'देखो तो वैभव, चक्र अपनी मां से नाराज हो गया। मनवा लो न, अपने शिष्य को।' कामज्योत्सना के मनमोदक चित्त का विनय भाव स्पष्ट था। वैभव यह सोचकर चक्र की ओर बढ़ा कि चलो, कामज्योत्सना के सा माउन्ट आबू जाने की आफत तो टली। वह चक्र के सामने खड़ा होकर

झुका और अपना चेहरा मुस्कराहटों से भरकर शिष्य की आंखों में निहारने लगा, फिर बोला, 'चक्र, मां से कभी नाराज हुआ जाता है ? चलो हंसो और माता को प्रणाम करो।'

वैभव कह तो गया, पर कामज्योत्सना की विलक्षण बुद्धि और बहुआयामी चरित्र के समक्ष अपने आपको कमजोर समझने लगा था। चक्र ने अपने ट्यूटर के शब्दों का अनुकरण किया पर शिकायत का स्वर उसके शब्दों में स्पष्ट था। वह निकट आते हुए बोला, 'ठीक है मम्मी ट्यूटर अंकल कहते है तो मान जाता हूं। परन्तु आपका उपेक्षित व्यवहार, कई कई दिनों तक निरंतर अनुपस्थिति हमें दुख पहुंचाती है। मम्मी, आपको क्या राजनीति हमसे अधिक प्रिय है ?'

चक्र का प्रश्न कामज्योत्सना को निरुत्तरित कर गया, वह स्वयं भर आयी। उसने चक्र को खींचकर अपनी छाती में भर लिया, फिर कई कई बार उसने चक्र के मासूम मुख को चूम लिया था। कामज्योत्सना के नयनों की भाव-निर्झर ज्योति अपने इकलौते बेटे के चेहरे पर स्थिर रही, फिर आंखें नम हो आयी थी और अन्तःकरण में चक्र का प्रश्न चोटी-हथौड़े की टिक टिक का सतत प्रहार झेलता हुआ स्वन-नाराने लग गया था। विश्वास को संजोकर मंत्री महोदया उत्तर खोजने लगी थी, फिर रुआंसी हो वह बोली, 'बेटे चक्र, अब मैं करूं भी क्या ? अर्थात राजनीति मेरे जीवन का अनिवार्य अंग बन गयी है। पर, तू तो मेरा सम्पूर्ण जीवन ही है। मत सोचना ऐसा कि मुझे तुमसे बढ़कर भी कोई प्रिय है।'

माता के ममत्व भरे निःसहाय युवा चेहरे की परछाइयों पर मन के दुख की रेखाएं छिप नहीं पायी और चक्र ने अनुभव किया कि उसने मम्मा के मन को दुख पहुंचाया है। वह किशोर अपराध-बोध में घिर आया, 'मम्मी, मैंने आपके मन को दुख पहुंचाया है न ?' और फिर प्रश्न के साथ ही चक्र फूट-फूटकर रोने लग गया था। कामज्योत्सना ने अपने बेटे को अंक में भर लिया और बेटा मां से लिपट-लिपटकर निर्भय हो रहा था।

वात्सल्य और स्नेह का मिलन अवर्णनीय था। स्वयं अन्तःकरण की आत्मीयता में बंध आया था। कामज्योत्सना ने चूम-चूमकर अपने मुन्ना को ममता की असंख्य लहरों से अंक से लिपटाकर अपना हो जाने की प्रेरणा

दी। बहुत देर बाद चक्र शान्त हुआ तब तक मंत्री महोदया की आंखों के दो-चार निर्धन मोती गालों पर ढुलक आए, पर कामज्योत्सना ने उन्हें तुरन्त पोंछ डाला था।

वैभव का सम्पूर्ण चित्त मां-बेटे के स्नेह-संस्कारों से अविरक्त होने लगा—जननी मां का प्यार, स्नेह और वात्सल्य···! वैभव के जीवन पर प्रश्न चिन्ह था। क्या वह कभी अपनी मां से शिकायत कर पाया था? मं भी वैसा और उसके पिता, बेदर्द इंसान—'चाय की प्याली में डूबे हुए चित्रकार।' वह जीवनपर्यन्त माता की करुणा और वात्सल्य से कितना विमुख रहा है! मात्र पिता की आज्ञा का पालन ही उसके लिये सब-कुछ था।

चक्र और कामज्योत्सना की शिकवा-शिकायत का विसर्पी दृश्य देख वैभव मां-बेटे के स्नेही सागर मे डुबकियां लगाने लगा था। वह तब किनारे लगा जब कामज्योत्सना ने उसे पुकारते हुए कहा, 'वैभव।'

'जी।'

'तुम्हें मेरे साथ चलना है।' फिर मंत्री महोदया चक्र के गले में हा'. बांधती हुई बोली, 'बेटे चक्र, अगर तुम आज्ञा दो तो तुम्हारे ट्यूटर अंकल को मैं अपने साथ भ्रमण मे ले जाऊं।'

'ट्यूटर अकल चलना चाहें तो ले जाओ, पर क्यों मम्मी?' चक्र ने हां को वैभव के साथ जोड़ साथ ले जाने का औचित्य पूछ डाला, तब वह बोली, 'नारायण की पत्नी का स्वर्गवास हो गया है और मुझे वैशाली नगर जाकर जन-समूह को सम्बोधित करना है। सो नारायण की अनुपस्थिति मे वैभव को ले जाना चाहती हू।' कुछ क्षण रुककर फिर वैभव को इशारा कर बोली 'क्यों वैभव, चलोगे न?'

वैभव को लगा कि वह कामज्योत्सना के इर्दगिर्द कैद होता जा रहा है। वह जाना नही चाहता था परन्तु टाल देने की हिम्मत भी कहां थी उसमें? सो वह केवल 'जी' कहकर रह गया था। कामज्योत्सना ने कलाई की घड़ी में देखा फिर विदा लेते हुए चक्र के बालों को सहलाने लगी, 'अच्छा बेटे अब हम जायें।'

'अच्छा मम्मी, परन्तु ट्यूटर अंकल को स्थायी सचिव नही बना देना।

हां, मेरी स्टडी···!' किशोर की सहमति में भी मां को सचेत कर देने की बात कितनी गर्भित थी? अधूरी बात छोड़ फिर वैभव की ओर निहार कर मुसकराते हुए चक्र ने कहा, 'हां—ट्यूटर अंकल, अस्थायी सेवाएं हैं मम्मी के लिये।'

'सच्च कहते हो चक्र।' नि श्वास छोड़ते हुए वैभव ने कहा फिर वे दोनों विदा लेकर कमरे से बाहर निकल आये थे।

जीवन को जीना ही जिन्दगी है और जिन्दगी को जीना एक कला, फिर इसी कला को संवारना जीवन का सार्थक रूप है। यह बात अलग है कि यही सार्थकता आदर्शयुक्त है या आदर्श से परे।

कामज्योत्सना अपने चहेते पुरुष के संग जब बरामदा पार कर रही थी तब पति ब्रह्मदत्त गांधी की उपस्थिति ने उसके जीवन की सार्थकता पर हथौड़े की चोट का आभास करवा दिया था। परन्तु पति की पगडंडी से हटकर जीवन को नई-नवेली सड़कों पर दौड़ा देने में जिस गति की अनिवार्यता थी, उसे पा लेने का साहस तो वह कब की प्राप्त कर चुकी थी, अब उसे जीवन की सार्थकता के साहस को सिद्ध कर देना था। हथौड़े की चोट के आभास ने उसे कुछ क्षण ब्रह्मदत्त गांधी से बतियाने हेतु विवश किया तो वैभव के सन्दर्भ में ही वह सर्वप्रथम बोली थी, 'गांधीजी, नारायण उपस्थित नहीं हुआ, उसकी पत्नी का स्वर्गवास हो गया है, सो वैभव को साथ ले जा रही हूं। देर रात तक लौट पाऊंगी।'

कामज्योत्सना के चेहरे की भाव-व्यंजना को पढ़ते हुए ब्रह्मदत्त गांधी ने अंकुरित हो आये पुरुष की ओर दृष्टि डाली तो वैभव इस अन्दाज का सामना नहीं कर पाया। उनकी ऊंची उठी ललाट पर लगी सिन्दूर की पतली रेखा का आकर्षण वैभव के मन में बसे चोर पर शक की आशंका को फलीभूत कर देने में काफी था। सजीला नवयुवक पति-पत्नी के सम्बन्धों की परिणति का मानदण्ड हो आया। एक क्षण वैभव को लगा कि वह दो चट्टानों के बीच उभर आई खाई में उलझ गया है और बाहर निकल जाने के सारे प्रयास निरर्थक हो गये हैं—वह निश्चेतन पड़ा अपने जीवन से जूझ रहा है।

वाह रे, संसार की एकरूपता! पति से विमुख नारी पुरुष को कहां-

अवश्य था। फिर वैभव की ओर निहारकर मंत्री महोदया ने कहा 'चलो वैभव, पति-पत्नी की नोक-झोंक को तुम्हारे चेहरे की उदास मुद्राओं में कोई अर्थ नहीं है।' फिर वह एक क्षण भी विलम्ब नहीं कर चल पड़ी तो वैभव को भी उसके पीछे चले चलना अनिवार्य हो गया था।

सो अब···? विवाहिता ट्यूटर के साथ चली गयी और अपाहिज पति हतप्रभ गांधी उन्हें निहारता रह गया था—ठीक वैसा ही जैसा, बाढ़ की विभीषिका के बाद बजरी में बंजर हो आये खेत को निहारता किसान! जमीन बजर हो गयी, कुआ ढह चुका और अर्थतंत्र से जुड़ा जुगाड़ वह गया।

वाहन की गति तेज थी। पिछली सीट पर बैठी मंत्री महोदया कमी-कदाच अपने चहेते पुरुष 'वैभव' की ओर देख पलकें बिछा देना चाहती, पर कार की अगली सीट पर बैठा वैभव वेग से कटती सड़क को ही देख रहा था।

कामज्योत्स्ना का अन्तर्मन बार-बार हिचकोले झेलता हुआ वैभव को पिछली सीट पर बुला देने को उत्सुक था पर तृतीय पुरुष के रूप में ड्राईवर की उपस्थिति ने उसे रोक दिया था। सम्भवत. सामाजिक या सांसारिक मर्यादा के अतिरिक्त उसे अपने उच्च पद की गरिमा को भी बचाये रखना था।

पीछे छूटते वृक्षों की शृंखला को देख रही कामज्योत्स्ना ने अपने मस्तिष्क में उठने विचारों को बांध देना चाहा परन्तु उभरते प्रश्न अनुत्तरित थे—व्यक्तिगत जीवन में पति से विमुखता, अन्य पौरुष से नैसर्गिक काम-सम्बन्धों का जाल-चक्र और पुत्र के सम्मुख मां होने की अनिवार्यता। पति-पुत्र और अन्य पुरुष के त्रिआयामी स्वांग-चरित्र के बीच ठहरी कामज्योत्स्ना ने अपनी बुद्धि-कौशल से सामंजस्य बिठा देने हेतु मन के दरवाजे पर आवरण डाल रखा था।

दूसरी ओर, सार्वजनिक जीवन में राजनैतिक गुरिल्ला व्यूह रचनाएं दगाबाजियां, मंत्री राधारमन पांड्या को मंत्री मंडल से हटवाकर नये राज-नैतिक शत्रुओं का उदय और आलाकमान के अधिक निकटतम पहुंच जाने की उच्च महत्वाकांक्षा ने कामज्योत्स्ना को अधिक गतिशील बना रखा

अवश्य था। फिर वैभव की ओर निहारकर मंत्री महोदया ने कहा, 'चलो वैभव, पति-पत्नी की नोक-झोंक को तुम्हारे चेहरे की उदास मुद्राओं मे कोई अर्थ नही है।' फिर वह एक क्षण भी विलम्ब नही कर चल पड़ी तो वैभव को भी उसके पीछे चले चलना अनिवार्य हो गया था।

लो अब···? विवाहिता ट्यूटर के साथ चली गयी और अपाहिज पति इन्द्रदत्त गांधी उन्हें निहारता रह गया था—ठीक वैसा ही जैसा, बाढ़ की विभीषिका के बाद बजरी से बंजर हो आये खेत को निहारता किसान ! जमीन बंजर हो गयी, कुआं ढह चुका और अर्थतंत्र से जुड़ा जुगाड़ बह गया।

वाहन की गति तेज थी। पिछली सीट पर बैठी मंत्री महोदया कभी-कदाच अपने चहेते पुरुष 'वैभव' की ओर देख पलकें बिछा देना चाहती, पर कार की अगली सीट पर बैठा वैभव वेग से कटती सड़क को ही देख रहा था।

कामज्योत्सना का अन्तर्मन बार-बार हिचकोले झेलता हुआ वैभव को पिछली सीट पर बुला देने को उत्सुक था पर तृतीय पुरुष के रूप में ड्राईवर की उपस्थिति ने उसे रोक दिया था। संभवतः सामाजिक या सांसारिक मर्यादा के अतिरिक्त उसे अपने उच्च पद की गरिमा को भी बचाये रखना था।

पीछे छूटते वृक्षों की शृंखला को देख रही कामज्योत्सना ने अपने मस्तिष्क में उठते विचारों को बांध देना चाहा परन्तु उभरते प्रश्न अनुत्तरित थे—व्यक्तिगत जीवन में पति से विमुखता, अन्य पौरुष से नैसर्गिक काम-सम्बन्धों का जाल-चक्र और पुत्र के सम्मुख मां होने की अनिवार्यता। पति-पुत्र और अन्य पुरुष के त्रिआयामी स्वांग-चरित्र के बीच ठहरी कामज्योत्सना ने अपनी बुद्धि-कौशल से सामंजस्य बिठा देने हेतु मन के दरवाजे पर आवरण डाल रखा था।

दूसरी ओर, सार्वजनिक जीवन में राजनैतिक गुरिल्ला व्यूह रचनाएं दगाबाजियां, मंत्री राधारमन पाड्या को मंत्री मंडल से हटवाकर नये राजनैतिक शत्रुओं का उदय और आलाकमान के अधिक निकटतम पहुंच जाने की उच्च महत्वाकांक्षा ने कामज्योत्सना को अधिक गतिशील बना रखा

था।

राजनैतिक चाल-चक्र में सिद्धहस्त होने के बाद भी वह अपने राजनैतिक शत्रुओं से सदैव चौकस रहने की अनिवार्यता को नहीं भूली थी, परन्तु राजनैतिक शत्रुता चक्र के किसी-न-किसी मोड़ पर व्यापक धरातल पाकर विस्फोट अवश्य कर देती है। राजनीति में चरित्र, व्यवहार और बुद्धि-कौशल के त्रिकोणात्मक सामंजस्य की अनिवार्यता होती है, परन्तु कामज्योत्सना का चरित्र किसी अन्य पुरुष के काम्य-पौरुष की कामातुर अनिवार्यता से जुड़ा था और यही लगाव-जुड़ाव शनै-शनै राजनैतिक प्रतिद्वन्द्वियों के लिये शक्ति का रूप धारण कर स्वयं उसके लिये महत्वाकांक्षाओं पर आघात करने वाला सिद्ध होने लगा था।

कामज्योत्सना की कार वैशाली नगर के निर्धारित स्थान पर पहुंची, जहां विशाल जनसमूह मंत्री महोदया के आने की प्रतीक्षा में जुटा था—दर्शनों का अभिलाषी, उनकी मधुर वाणी को सुनने हेतु उत्सुक। कार से नीचे उतरी तो कई स्थानीय नेताओं और कार्यकर्ताओं ने उन्हें पुष्प मालाएं अर्पित की थी।

कामज्योत्सना की मुख-मुद्राए प्रसन्नचित्त थी। पर जैसे ही मंत्री महोदया की दृष्टि स्टेज की ओर बढ़ते पूर्व मंत्री राधारमन पांड्या पर पड़ी तो मुख की मुद्राओं मे परिवर्तन आ गया और वह सोच-शील हो राधारमन पांड्या के हाथ में पकड़ी ताजे फूलो की भारी माला पर केन्द्रित हो आयी। वह स्टेज पर पहुंची तब राधारमन पांड्या ने ही माला अर्पित कर कामज्योत्सना का स्वागत किया परन्तु ये स्वागतपुष्प सम्मानपूर्ण थे या विषैली भावनाओं से ओत-प्रोत, इसे कामज्योत्सना भेदिये की तरह जान गयी थी।

लेकिन विशाल जनसमूह के समक्ष वह इन कुचालो को सहन कर लेने के अतिरिक्त कर भी क्या सकती थी सो वह शान्त चित्त रही और मुख की मुद्राओं को पूर्ववत् देवीतुल्य बनाये रखकर मुस्करा-मुस्करा देती थी। निर्धारित स्थान पर आसन ग्रहण कर लेने के पूर्व कामज्योत्सना ने जनता की ओर दृष्टि डालकर अपना दाहिना हाथ ऊपर उठा लिया था तो बदले में उसकी प्रिय जनता ने करतल-ध्वनि से मंत्री महोदया का स्वागत किया था। जय-जयकार के स्वरों से पांडाल गुंजायमान हो रहा था। फिर कामज्योत्सना

ने दोनों हाथ जोड़कर जनता का अभिवादन स्वीकार किया, और साड़ी को सम्भाल व्यवस्थित करती हुई माथे पर पल्ला ओढ़कर निर्धारित आसन पर आकर बैठ गयी थी। वैभव स्टेज के एक कोने पर गुमसुम खड़ा था, नितांत-तिरस्कृत अकेला।

दूसरी ओर माइक पर अपना अधिकार जमाकर पूर्व मंत्री राधारमन पांड्या मंत्री महोदया को जनता के समक्ष प्रताड़ित करने हेतु विषैली भावनायुक्त कटाक्षों में बोलने लगा था, 'जिस महामहिमा मंत्री का तुम सब लोग पिछले दो घंटों से इन्तजार कर रहे थे, वह आ गयी है। आपके सामने, मेरी बगल में। साक्षात् देवी लगती है, अप्सरा भी है। राज्य-शासन में इसकी पहले दर्जे की घुसपैठ है। सम्भव है चुनाव के बाद ये मुख्यमंत्री बने, हो सकता है हार भी जाये। वैसे गरीबों की मसीहा है और व्यापारियों-उद्यमियों की रक्षक-भक्षक। इसका जीवन आपको अब क्या बतलाऊं, दोहरा है, बहुआयामी···।' राधारमन पांड्या के कुपित शब्दों को रोकना समय की मांग थी सो कामज्योत्सना शेरनी की तरह उठ खड़ी हुई। ध्वनियन्त्र के पास पहुंची और राधारमन पांड्या की तरफ देख मुस्करा एक आंख झपकाकर बोली, 'एक मिनट। बस रहने दीजिये, ज्यादा तारीफ···।' यह कहते-कहते जैसे माइक पर चढ़ गयी और राधारमन पांड्या की बौखलाहट का फायदा उठा माइक हथिया लिया। पूर्व मंत्री देखता रहा, वह कुछ करने की स्थिति में आये कि एक कार्यकर्ता ने हाथ पकड़कर उन्हें बिठा दिया था। कामज्योत्सना ने अपनी मधुर वाणी से जनता का मन मोह लिया, वह बोलने लगी थी, 'जनता की अदालत में अपने आपको समर्पित कर आप सबकी सेवा करने का जो सौभाग्य मुझे मिल रहा है वह हम सबकी खुशहाली का मार्ग प्रशस्त करेगा। हां तो मेरे शक्तिशाली भाइयो और प्रसन्नचित्त बहनो, मैं अपनी बात एक कहानी से प्रारम्भ करती हूं। पुराने जमाने में एक राजा हुआ करता था जो अपने चाटुकार-दरबारियों या आज की भाषा में, अतिश्योक्तिपूर्ण तारीफें करने वाले चमचों से घिरा रहता था। वे उनकी तारीफें किया करते, वाह-वाह किया करते, मस्का लगाते और राजा साहब फूल-फूलकर कुप्पा हो जाते थे। दरबार में स्पष्ट दृष्टिकोण वाले बुद्धिशील दरबारी भी थे पर उनकी आवाज तब दबी-दबी थी। एक

ने दोनों हाथ जोड़कर जनता का अभिवादन स्वीकार किया, और साड़ी को सम्भाल व्यवस्थित करती हुई माथे पर पल्ला ओढ़कर निर्धारित आसन पर आकर बैठ गयी थी। वैभव स्टेज के एक कोने पर गुमसुम खड़ा था, नितांत-तिरस्कृत अकेला।

दूसरी ओर माइक पर अपना अधिकार जमाकर पूर्व मन्त्री राधारमन पांड्या मंत्री महोदया को जनता के समक्ष प्रताडित करने हेतु विषैली भावनायुक्त कटाक्षों में बोलने लगा था, 'जिस महामहिमा मंत्री का तुम सब लोग पिछले दो घंटों से इन्तजार कर रहे थे, वह आ गयी है। आपके सामने, मेरी बगल में। साक्षात् देवी लगती है, अप्सरा भी है। राज्य-शासन में इसकी पहले दर्जे की घुसपैठ है। सम्भव है चुनाव के बाद ये मुख्यमंत्री बने, हो सकता है हार भी जाये। वैसे गरीबों की मसीहा है और व्यापारियों-उद्यमियों की रक्षक-भक्षक। इसका जीवन आपको अब क्या बतलाऊं, दोहरा है, बहुआयामी…।' राधारमन पांड्या के कुपित शब्दों को रोकना समय की मांग थी सो कामज्योत्सना शेरनी की तरह उठ खड़ी हुई। ध्वनियन्त्र के पास पहुंची और राधारमन पांड्या की तरफ देख मुस्करा एक आंख झपकाकर बोली, 'एक मिनट। बस रहने दीजिये, ज्यादा तारीफ…।' यह कहते-कहते जैसे माइक पर चढ़ गयी और राधारमन पांड्या की बौखलाहट का फायदा उठा माइक हथिया लिया। पूर्व मन्त्री देखता रहा, वह कुछ करने की स्थिति में आये कि एक कार्यकर्ता ने हाथ पकड़कर उन्हें बिठा दिया था।

कामज्योत्सना ने अपनी मधुर वाणी से जनता का मन मोह लिया, वह बोलने लगी थी, 'जनता की अदालत में अपने आपको समर्पित कर आप सबकी सेवा करने का जो सौभाग्य मुझे मिल रहा है वह हम सबकी खुशहाली का मार्ग प्रशस्त करेगा। हां तो मेरे शक्तिशाली भाइयों और प्रसन्न-चित्त बहनो, मैं अपनी बात एक कहानी से प्रारम्भ करती हूं। पुराने जमाने में एक राजा हुआ करता था जो अपने चाटुकार-दरबारियों या आज की भाषा में, अतिशयोक्तिपूर्ण तारीफें करने वाले चमचों से घिरा रहता था। वे उनकी तारीफें किया करते, वाह-वाह किया करते, मस्का लगाते और राजा साहब फूल-फूलकर कुप्पा हो जाते थे। दरबार में स्पष्ट दृष्टिकोण वाले बुद्धिशील दरबारी भी थे पर उनकी आवाज सब दबी-दबी थी। एक

था।

राजनैतिक चाल-चक्र में सिद्धहस्त होने के बाद भी वह अपने राजनैतिक शत्रुओं से सदैव चौकस रहने की अनिवार्यता को नहीं भूली थी, परन्तु राजनैतिक शत्रुता वक्त के किसी-न-किसी मोड़ पर व्यापक धरातल पाकर विस्फोट अवश्य कर देती है। राजनीति में चरित्र, व्यवहार और बुद्धि-कौशल के त्रिकोणात्मक सामंजस्य की अनिवार्यता होती है, परन्तु कामज्योत्सना का चरित्र किसी अन्य पुरुष के काम्य-पौरुष की कामातुर अनिवार्यता से जुड़ा था और यही लगाव-जुड़ाव शनैः-शनैः राजनैतिक प्रतिद्वन्द्वियों के लिये शक्ति का रूप धारण कर स्वयं उसके लिये महत्वाकांक्षाओं पर आघात करने वाला सिद्ध होने लगा था।

कामज्योत्सना की कार वैशाली नगर के निर्धारित स्थान पर पहुंची, जहां विशाल जनसमूह मंत्री महोदया के आने की प्रतीक्षा में जुटा था— दर्शनों का अभिलाषी, उनकी मधुर वाणी को सुनने हेतु उत्सुक। कार से नीचे उतरी तो कई स्थानीय नेताओं और कार्यकर्ताओं ने उन्हें पुष्प मालाएं अर्पित की थीं।

कामज्योत्सना की मुख-मुद्राएं प्रसन्नचित्त थीं। पर जैसे ही मंत्री महोदया की दृष्टि स्टेज की ओर बढ़ते पूर्व मंत्री राधारमन पांड्या पर पड़ी तो मुख की मुद्राओं में परिवर्तन आ गया और वह सोच-शील हो राधारमन पांड्या के हाथ में पकड़ी ताजे फूलों की भारी माला पर केन्द्रित हो आयी। वह स्टेज पर पहुंची तब राधारमन पांड्या ने ही माला अर्पित कर कामज्योत्सना का स्वागत किया परन्तु ये स्वागतपुष्प सम्मानपूर्ण थे या विद्वेष भावनाओं से ओत-प्रोत, इसे कामज्योत्सना भेदिये की तरह जान गयी थी।

लेकिन विशाल जनसमूह के समक्ष वह इन कुचालों को सहन कर लेने के अतिरिक्त कर भी क्या सकती थी सो वह शान्त चित्त रही और मुख की मुद्राओं को पूर्ववत् देवीतुल्य बनाये रखकर मुस्करा-मुस्करा देती थी। निर्धारित स्थान पर आसन ग्रहण कर लेने के पूर्व कामज्योत्सना ने जनता की ओर दृष्टि डालकर अपना दाहिना हाथ ऊपर उठा लिया था तो बदले में उसकी प्रिय जनता ने करतल-ध्वनि से मंत्री महोदया का स्वागत किया था। जय-जयकार के स्वरों से पांडाल गुंजायमान हो रहा था। फिर

दिन साहस बटोरकर स्वच्छ आलोचना करने वाले एक समझदार दरबारी ने अनुरोध भरे स्वर में कहा—महाराज, ये तारीफों के पुल बांधने वाले चाटुकार दरबारी आपके शासन तन्त्र को खोखला कर देंगे। परन्तु राजा साहब ने उसकी बात पर कोई ध्यान नही दिया, उल्टा उसे डांटकर दरबार से निकाल दिया। फिर क्या था? इन राजकीय चमचों ने तारीफों के पहाड़ के पहाड़ राजा साहब को समर्पित कर दिये और राज्यकोष से अपने ऐशो-आराम के साधन जुटाने में लग गये थे। फिर जनता पर अत्याचार होने लगे और बेचारी जनता दुःखी। वे राजा साहब के सामने कहते, जनता खुशहाल है, आपके गुणगान करती है, किसी भी तरह के षड्यंत्र की कोई सम्भावना नही है, आप निश्चिन्त रहें। और राजा साहब निश्चिन्त! परंतु षड्यन्त्रकारी कब, कहां शान्त रहे हैं। उन्होने मौका पाकर उन समस्त चाटुखोर-चमचों को प्रलोभन देकर झूठे वादे किये और रातों-रात सत्ता परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त किया और इन्ही भेदियों से भेद जानकर राजा को बन्दी बना दिया। तब कही जाकर राजा साहब को सम्पूर्ण षड्यन्त्र का पता चला परंतु तब तक बहुत देर हो चुकी थी और शासन-तंत्र आतंकवादियों के पास गिरवी पड़ा था। ये कहानी बतलाती है सज्जनों, तारीफों के पुल बांधने वाले कितने पानी में होते हैं। इसलिए मैं सबसे कहता हूं—मत करो व्यर्थ की तारीफें। हमें इन्सान रहने दो, देवी-देवताओं के समतुल्य ऊपर मत उठाओ, पर ये स्वार्थी तत्व बाज नही आते। अरे, कुछ करना है तो जनता की सेवा करो, जनता के दुःख दर्द को दूर करने का प्रयत्न करो, गांव में जाओ, उनकी समस्याओं का निवारण करो जैसा कि हमारे सर्वोच्च नेता सोचते हैं। सूत्रीय कार्यक्रम के सूत्रों ने जनता के जीवन को नयी दिशा दी है और हम आप सब मिलकर उसे गति देंगे। आज हमें आतंकवादियों से बचना है, षड्यंत्रकारियों को नेस्तनाबूत कर देना है। राष्ट्र की एकता सर्वोपरीय है और इसकी अखण्डता को किसी भी मूल्यों पर किसी भी तरह का बलिदान देकर बनाये रखना है।

मैं पूछती हूं—क्या आतंकवाद की समस्या हिंसा से ही हल होगी? या आसाम की समस्या का समाधान तथाकथित विदेशों से आये नागरिकों को देश से निकाल देने पर हल होगी या धधकते हुए पुंजराव को सम्पूर्ण

आरक्षण नीति समाप्त कर देने पर ही शान्त किया जा सकेगा। ये सब बुनियादी प्रश्न हैं और हल इतना आसान नहीं है। यह तभी सम्भव होगा जब वातावरण सामान्य हो—सौहार्दपूर्ण हो। विरोधी दल सहयोग की नीति का अनुसरण करें और सरकार की भावनाओं के अनुरूप राष्ट्र की एकता और अखण्डता की नीति को स्वीकार कर उसे बनाये रखते हुए आम सहमति की बात करें।

जनता द्वारा चुनी गयी सरकार क्या आप लोगों की भावनाओं के प्रतिकूल कार्य कर सकती है? नहीं मेरे भाइयो, बिल्कुल नहीं। परन्तु निराश राजनीतिज्ञ जब जनता का विश्वास प्राप्त नहीं कर पाते तब वे अशोभनीय-गन्दी हरकतें करने पर बाज नहीं आते। आन्दोलनों को अपनाकर हिंसा का मार्ग खोल देते हैं, भोली-भाली जनता को गुमराह करते हैं और विदेशी शह पर देश की आम जनता पर कहर ढा देते हैं।

आज हमें इन सबमें बचना है, हमारी सरकार इन असामाजिक तत्वों से कठोरता से पेश आ रही है और जनता में अमन-चैन और शान्ति बनाये रखने का हर सम्भव प्रयत्न कर रही है, और आप लोगों को भी सरकार की नीतियों में सहयोग देना पड़ेगा। यह बात खासतौर से स्पष्ट है कि हमारे देश में एक पार्टी ही है जो अपने महान सिद्धान्तों पर अडिग है। राष्ट्र को एकता के सूत्र में बांधकर इसकी अखण्डता को बनाये रखने हेतु प्रतिबद्ध है। जरा सोचिये वह कौन-सी पार्टी है? वह है हमारी पार्टी—आपकी अपनी पार्टी, जिसका पुराना इतिहास बलिदान, समर्पण और राष्ट्रभक्ति से भरा पड़ा है और आजादी के बाद भारत को एक सशक्त राष्ट्र के रूप में पंचवर्षीय योजनाओं का मार्ग प्रशस्त कर आगे बढ़ाया। शोषण से मुक्ति दिलाकर गरीब जनता की सेवा की।

और औद्योगिक दृष्टि से देखिये—हमारा राष्ट्र निरन्तर आगे बढ़ रहा है और आत्मनिर्भर हो रहा है। तीसरी दुनिया का भारत सिरमौर है जो गुट निरपेक्ष आन्दोलनों को सशक्त नेतृत्व प्रदान कर रहा है। हम निःशस्त्रीकरण में विश्वास करते है और पंचशील के सिद्धान्तों को मानते है। पर, यदि हम पर एटमी युद्ध थोपा जाता है तो इसका पुरजोर जवाब हमें अत्याधुनिक युद्ध प्रणाली से देना ही होगा। हमने भूमिगत परमाणु विस्फोट

वैभव साये की तरह उसके पीछे-पीछे चल रहा था परन्तु निजी सचिव की औपचारिकता में वह अनभिज्ञ था सो वह मंत्री महोदया के लिए कार का दरवाजा नहीं खोल पाया था। औपचारिकता को नहीं निभाया जाना मंत्री महोदया के आत्म-सम्मान को ठेस पहुंचाने वाला कृत्य था। पर काम-ज्योत्सना कर भी क्या सकती थी? सच भी यही था कि वह अपने व्यक्तिगत आनन्दमय क्षणों के लिए ही तो वैभव को अपने साथ लायी थी तो भला पी० ए० की औपचारिकता में वह कहां खरा उतर सकता था, सो वह स्वयं आगे बढ़ी और कार का दरवाजा खोल दिया। वह अभी विदा लेकर बैठने ही वाली थी कि पूर्व मंत्री राधारमन पाड्या भीड को जैसे चीरता हुआ मंत्री महोदया के सामने चला आया और भेद भरी दृष्टि से वैभव की ओर घूरकर उसने पूछा, 'कामज्योत्सनाजी, आपके साथ ये सजीला युवक कौन है? कहां से पाला है?'

मंत्री महोदया सकते में आ गयी कि राधारमन पाड्या द्वारा इस अमानसिक कुदग्रह-प्रश्न को पूछने का क्या औचित्य है? परन्तु औचित्य स्वयं प्रश्न में निहित था। फिर मन के चोर को छिपाते हुए मंत्री महोदया ने अपनी स्थिति को कमजोर नहीं होने दिया और पूर्ण साहस भरे शब्दों में बोली थी, 'पांड्याजी, अपनी कमजोरी दूसरों पर मढ़ने का साहस मत कीजिये। हो सकता है ये सजीला युवक भारत का प्रधान मंत्री बने या आपका दामाद ही बन जाये। फिलहाल यह पी० ए० की भूमिका निभा रहा है। समझ गये न आप?'

'हूं ये बात है। पर बेटी मंत्री महोदया, वैवाहित पुत्री तिस पर पति की उपस्थिति के बाद अन्य पुरुष को दामाद कबूल कर लेने के पूर्व मैं स्वयं आत्महत्या कर लूंगा या फिर बेटी का कत्ल। क्यों, समझ गयी न?'

'आप जैसे कायर या तो किसी निहत्थे का कत्ल कर डालते हैं या फिर स्वयं आत्महत्या। फूलों की माला में पिरोकर जिन विस्फोटक अणुओं को समर्पित कर आप हर्षित हो रहे हैं, वे आपके घिनौने कृत्य के परिचायक बन गये हैं।' फिर वह धम्म से कार में घुस पिछली सीट पर बैठ गयी थी। ड्राइवर ने स्टेयरिंग सम्भाला तब तक वैभव भी अगली सीट पर बैठ गया था। कार चली तो मंत्री महोदया की जय-जयकार के साथ चरित्र के सम्बन्ध

में उसी कानाफूसी का स्वर दबा-दबा था।

कामज्योत्स्ना की कमजोरी पर सशक्त प्रहार कर पूर्व मंत्री राधारमन पाण्डेय ने प्रतिशोध की भावना को आगे बढ़ा दिया था। व्यक्तिगत चरित्र को उजागर कर देना यद्यपि ओछे हथकण्डे थे परन्तु राजनीति में शिकस्त देने तथा सार्वजनिक आचरण को पछाड़ने के लिए ये मील के पत्थर थे। किसी भी राजनीति-कुशला की जो स्वच्छ छवि जनता के समक्ष होती है, उसमें नैतिक आदर्श की भूमिका का अहं व महत्वपूर्ण प्रश्न होता है। क्या इसी प्रश्न का उत्तर कामज्योत्स्ना की राजनैतिक छवि को बौना सिद्ध करने के लिए काफी न था?

भारतीय सभ्यता और संस्कृति का धरातल नैतिकता की धुरी पर टिका है। वस्तुतः स्वच्छन्दता और उन्मुक्त भोग विलासिता की विषयवस्तु है जो पूर्णतः लाभ प्रिय होते हुए भी हमारी मानसिकता को स्वीकारणीय नहीं है, क्योंकि हमारी संस्कृति भोग-सम्भोग को नहीं बल्कि अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य को जीवन की कसौटी मानती है। अत्यधिक आधुनिक और पश्चिमीकृत सुसभ्यता को समेट लेने की चाहत के बाद भी, हम भारतीय-संस्कृति का मूल धरातल कहाँ छोड़ पाते हैं—यही हमारी महानतम संस्कृति की गहराई है जो ऋषियों के आप्त वचनों में संचित होकर हमें मजबूत सम्बल प्रदान करती है और नैतिक आचरण को जीवन का श्रेष्ठतम साधन मानती है जो सत्य है।

लेकिन सत्य को छिपा देने की कला सफल राजनीति का निचोड़ है, फिर निचोड़ को निचोड़कर सुखा देना, इसका मर्म। सत्य, सत्य ही रहता है और शासन तन्त्र निर्बाध रूप से चलता रहता है। जिसे हम श्रेष्ठ मानते वह सदैव श्रेष्ठ नहीं रहता। माया का चक्र कभी सुलटा और कभी उल्टा चलता ही रहता है जो कि एक-दूसरे के सुख-दुःख से जुड़ा है।

कार की गति के साथ कामज्योत्सना के चेहरे पर जो भाव गतिशील , वे आने वाले कल की क्रियाशीलता को उजागर कर रहे थे। राधारमन ाण्डिया उफ! इस आफत को कैसे धूल चटाई जाये…? साला-हरामजादा, अपने को बड़ा राजनीतिज्ञ समझता है। मंत्रिमंडल से हटवाकर ठिकाने लगा या फिर भी अक्खड़! कमीना। ओछे हथकंडे अपना रहा है—'ये सजीला'

दुबक कौन है ?' मधे तेरा बाप । क्या लेना तुझे ?

कार की पिछली सीट पर बैठी मन्त्री महोदया का चित्त-तन्त्र राधारमन पाड्या के प्रति घृणाशील था। रह-रहकर पूर्व मन्त्री के चेहरे की झुर्रियां आंखों के सामने उभर उसके विचार वेग से टकराती और वह उसे टुकड़ा-टुकड़ा तोड़ देने हेतु अपशब्दों का प्रयोग मन ही मन कर सन्तुष्ट होने की चेष्टा करती जो मस्तिष्क में समायी नफरत को पुष्टि प्रदान कर देती थी।

तकरीबन, दो घंटे के लगातार सफर के दौरान न तो मन्त्री महोदया ने कोई बात कही और न ही वैभव बोला था। चालक कार चलाने में मशगूल था। वही मन्त्री महोदया भविष्य में पड़ने वाले पड़ावों का सामना करने की शक्ति संग्रहित कर व्यूह रचना रच रही थी। यदि राधारमन पाड्या ने उसके व्यक्तिगत जीवन पर कीचड़ उछालने की सार्वजनिक चालें चली तो उसका सामना वह किस तरह कर पायेगी ? क्या पूर्व मन्त्री ने वैभव से उसके शारीरिक सम्बन्धों का कोई साक्ष्य जुटा लिया है ? कामज्योत्सना सोचशील हो हिम्मत बटोर रही थी और रह-रहकर अशुभ आशंका का सामना कर रही थी।

कार जब मन्त्री महोदया की कोठी के पोर्च में रुकी तब सर्वप्रथम वैभव उतरा परन्तु उसने कार का पिछला दरवाजा नहीं खोला तो कामज्योत्सना चिढ़ गयी और झुनझुना कर स्वयं दरवाजे का हैंडल घुमाया और द्वार खोल बाहर आ गयी। फिर ड्राइवर की उपस्थिति में ही उसने वैभव को लताड़ दिया था, 'तुम्हें इतनी भी तहजीब नहीं कि मन्त्री महोदया की कार का दरवाजा पी० ए० ही खोला करते हैं, स्वयं मैं नहीं। भविष्य में ध्यान रखा जाये। समझे, वर्ना…।'

वैभव को लगा कह दे वर्ना क्या…? परन्तु आत्मसम्मान पर प्रहार को झेलता हुआ वह अवाक् रह गया, और मन्त्री महोदया हिदायत दे झटककर सीधे गैलरी पार करती हुई अपने शयन-कक्ष की ओर चली गयी थी। वैभव देखता रहा और दिल पर लगी ठेस को झेलता रहा, उसे अपने आप से दृष्टिकोण पर नफरत हो आयी थी। जिस औरत ने उसे गले लगाकर कई-कई बार भोगा था, उसी तरंगिनी ने उसे दो कौड़ी का नौकर सिद्ध कर दिया।

वाह री नारी ! सशरीर समर्पण की सन्तुष्टि में आत्मसम्मान का ह्रास

उसके अन्तर-निहित कामोत्तेजक रसिक बिम्ब को उजागर कर देता था। रूपाली नारी सुहावने स्वप्न में रम-क्रीडा कर रही थी पर कामज्योत्सना के स्वप्न के पीछे उभरी काली छाया ने उसे दबोच दिया था और स्वच्छन्द रम रही नारी के मस्तिष्क में समायी भय की आशंका ने राजनीति के शत्रु को इसी स्वप्न में भी उपस्थित कर दिया था।

राधारमन पाड्या ! हां वही तो थी काली छाया, जिसने कामज्योत्सना और वैभव के मायावी रूप को काम-क्रीडा करते हुए देख लिया था। मंत्री महोदया सिहर गयी, अज्ञात भय ने उसे कम्पित किया कि उसका स्वप्न टूट गया था।

वह बिछावन से उठ बैठी और आन्तरिक घबराहट को समेटकर शयन कक्ष के चारों ओर देखने लगी थी। कहां था राजनैतिक शत्रु—राधारमन पाड्या ? फिर स्वप्न में उभरे डर को मात्र स्वप्न मानकर उसे आत्मसात कर सन्तोष की सांस भरी जैसे जीवन की गुप्तता का राज खुल जाने से रह गया हो।

वह उठी, शयन-कक्ष के प्रकाश-पुंज को जलाया और अंगडाई भर सामान्य हुई। नीति-विज्ञ नारी की अनीति जितनी सुखकर थी क्या उतनी दुखकर भी ? इस पर चाहे जितना पर्दा डाला जाये—नीति की बात खरी उतरती है।

बाहर से जो जितना शक्तिशाली होता है, अन्दर से उतना ही भयभीत हो जाता है और अपने बचाव के अनेकों-अनेकों साधन जुटाता है। काम-ज्योत्सना ने कलाई पर बंधी घड़ी पर नजर डाली, तब रात के तीन बज चुके थे। उसने फिर सो जाने का मानस बनाया और प्रकाश-पुंज के बटन को ऑफ कर कमरे को अंधेरे में विलीन कर दिया। फिर पलंग पर पसर गयी। कुछ देर तक वह आंखें मूंदे रही पर नींद उससे कोसों दूर जा चुकी थी। फिर आंखें खोल करवट बदली तो सहसा अलौकिक काम स्फूर्ति का देदीप्यमान प्रकाश उभरा और उसकी देह में स्पंदन करता हुआ बुद्धि की चलायमान गति को अवरुद्ध कर मस्तिष्क में समा गया। यहीं से प्रारम्भ हुआ था मन में बसे पौरुष को [illegible] पा लेने की [illegible]

आर्तनाद।

हो गया। मन का आकर्षण धन को [illegible] कितना [illegible] था—कितना दुःख कर। अपनी रचना में स्वयं वैभव रह गया। उसे लगा—वह पुरुष के यौवन में विकसित [illegible] है, जो उसके मन को [illegible] है और नहीं आत्मा का [illegible] दीप। [illegible] के साथ में ही बुझ गयी थी। क्या किसी भोग की वस्तु है वह? जिसे कोई पुरुष देह की समृद्ध [illegible]-कामिनी [illegible] मन की विद्रूप [illegible] अपने जीवन का विराम बनाते है। मंत्री महोदया की प्रताड़ना ने वैभव को अपनी निम्नस्तरीय स्थिति से परिचित करवा दिया था। औरत को उभार देना नियति का सुनियोजित चक्र है, जिसमें वैभव स्वयं घूम आया था।

यह प्रभाव उसकी सोचने का अनुत्तरित प्रश्न था या साध्य···? यह समझ पाना आसान न था। कुछ पल वह कार के पास ही खड़ा रहा फिर असहनीय मानसिक वेदना को झेलता हुआ मंत्री महोदया की कोठी से अपने शिष्य पक्ष में मिले बिना ही निकल पड़ा था—कितना कलुषित, कितना प्रताड़ित हेय दृष्टिकोण था, दुष्पद और स्वाभिमान हनन को लिये।

आधी रात, आगे बढ़ता हुआ अन्धकार और स्वप्न में घिरती कामज्योत्सना अपने शयन बिछोवन पर गुरवादु नींद भोग रही थी। सोने का आलम यह था कि उसकी देह मानो वैभव से लिपटकर सो रही हो। कमसिन काया ने स्वप्न से प्रेरित होकर काम की स्वीकृति को समर्थन दे दिया। फिर वैभव को आमन्त्रित कर उसे रिझा-रिझा जिस स्थिति में खड़ा कर अपने में विलीन कर लिया था वह सब कुछ कामज्योत्सना की बाहों में सिमटे हुए कपाल-पोल से स्पष्ट था।

कभी-कभी स्वप्न मानसिक प्रेम सम्बन्धों को काया पर उड़ेल देता है और स्वीकृति के स्वरों को स्वभोग की स्थिति में लाकर तन की व्यग्रता को सन्तुष्ट करता है। यही प्रकृति की विडम्बना मंत्री महोदया को नींद में भी जकड़े हुए थी। परन्तु यह जकड़ाव कितना सुखकर, कितना मीठा, कितना आनन्दमयी था, इसका अहसास मन की माया को किसी-न-किसी रूप में अवश्य होता है।

कामज्योत्सना का अपने चहेते पुरुष वैभव के संग स्वप्न के दरमियान लिपट-लिपट जाना इतना तेज था कि काया का बिछोवन पर उखाड़-पछाड़

उसके अन्तर-निहित कामोत्तेजक रसिक बिम्ब को उजागर कर देना था। रूपाली नारी सुहावने स्वप्न में रस-क्रीड़ा कर रही थी पर कामज्योत्सना के स्वप्न के पीछे उभरी काली छाया ने उसे दबोच दिया था और स्वच्छन्द रम रही नारी के मस्तिष्क में समायी भय की आशंका ने राजनीति के शत्रु को इसी स्वप्न में भी उपस्थित कर दिया था।

राधारमन पाण्डेया ! हां वही तो थी काली छाया, जिसने कामज्योत्सना और वैभव के मायावी रूप को काम-क्रीड़ा करते हुए देख लिया था। मंत्री महोदया सिहर गयीं, अज्ञात भय ने उसे कम्पित किया कि उसका स्वप्न टूट गया था।

वह बिछावन से उठ बैठी और आन्तरिक घबराहट को समेटकर शयन कक्ष के चारों ओर देखने लगी थी। कहां था राजनैतिक शत्रु—राधारमन पाण्डेया ? फिर स्वप्न में उभरे डर को मात्र स्वप्न मानकर उसे आत्मसात कर सन्तोष की सांस भरी जैसे जीवन की गुत्थी का राज खुल जाने से रह गया हो।

वह उठी, शयन-कक्ष के प्रकाश-पुंज को जलाया और अंगड़ाई भर सामान्य हुई। नीति-विज्ञ नारी की अनीति जितनी सुखकर थी क्या उतनी दुखकर भी ? इस पर चाहे जितना पर्दा डाला जाये—नीति की बात खरी उतरती है।

बाहर से जो जितना शक्तिशाली होता है, अन्दर से उतना ही भयभीत हो जाता है और अपने बचाव के अनेकों-अनेकों साधन जुटाता है। काम-ज्योत्सना ने कलाई पर बंधी घड़ी पर नजर डाली, तब रात के तीन बज चुके थे। उसने फिर सो जाने का मानस बनाया और प्रकाश-पुंज के बटन को ऑफ कर कमरे को अंधेरे में विलीन कर दिया। फिर पलंग पर पसर गयी। कुछ देर तक वह आंखें मूंदे रही पर नींद उससे कोसों दूर जा चुकी थी। फिर आंखें खोल करवट बदली तो सहसा अलौकिक काम स्फूर्ति का देदीप्यमान प्रकाश उभरा और उसकी देह से स्पंदन करता हुआ बुद्धि को चलायमान गति को अवरुद्ध कर मस्तिष्क में समा गया। यहीं से प्रारम्भ हुआ था मन में बसे पौरुष को बार-बार पा लेने की इच्छा शक्ति का आर्तनाद।

नहा-धोकर जब मनी महोदया बाहर आयी तब प्रभात का प्रथम प्रहर प्रारम्भ हो चुका था। सुबह के साढ़े नौ बज रहे थे। कामज्योत्सना ने वैभव के घर चले चलने का मानस बना लिया था पर अशुभ की आशंका ने पीछा नहीं छोड़ा था। वह शंकित हो आयी तो फिर पलंग पर बैठ गयी। फिर विचार वेग में विचार मंथन हुआ, जाऊं या नहीं जाऊं। कुछ नहीं होगा, कुछ हो गया तो···? पर अब रहा भी नहीं जाता। हे भगवान ! देह का यह कैसा विकार, शरीर से कैसा जुड़ाव—ये क्या हुआ जा रहा है। श्वासों में यह कैसी अप्रत्याशित गति है—काया अगार हो रही है। अरे, अब मैं मर जाऊंगी। मुझे जाना ही होगा। कोई नहीं रोक सकता।'

कुल मिलाकर कामज्योत्सना के काम की भीमकाय गुंजन ने विचार-मंथन को दिशा दी और अशुभ की आशंका दब गयी। वह कटीले रास्तों पर चल पड़ी थी।

वह चुपके से बाहर निकली, गैलरी पार कर लॉन में आ गयी, फिर वह कार गैरेज की ओर मुड़ ही रही थी कि ब्रह्मदत्त गांधी की उपस्थिति ने उसे कम्पित कर दिया। वह ठहर गयी और अपाहिज पति की ओर निहारने लगी, परन्तु व्हील चेयर पर निश्चेष्ट भाव से पूर्व की ओर निहारता अपाहिज पुरुष शान्त था। उसका ध्यान विवाहिता की उपस्थिति की ओर नहीं गया था। ऐसा लगा जैसे वह विचारशील, प्रभात के सुखद आगमन से अपने *जीवन की अंधियारी रातों को भुला देना चाहता हो। पूर्व की शून्यता में* निहारता पुरुष अपनी ही वेदना में लुप्त था।

तत्पश्चात ब्रह्मदत्त गांधी का ध्यान सजी-संवरी नवयौवना, अपनी ही भार्या पर ठहर गया। विवाहिता स्वयं उसे निहार रही थी। ब्रह्मदत्त गांधी ने व्हील चेयर के पहियों को अपने दोनों हाथों में पकड़कर कामज्योत्सना की ओर मोड़ दिये तो अर्धांगिनी निःसंकोच हिम्मत बटोर पति की ओर बढ़ गयी थी। व्हील चेयर के पास आकर बोली वह, 'गांधीजी बहुत देर *से देख रही हूं कि आप निरन्तर पूर्व की ओर निहार कुछ खोज पाने की* चेष्टा कर रहे हैं। क्यों, ठीक कह रही हूं न मैं ?'

कामज्योत्सना का आकलन पति की उपस्थिति के औचित्य को सिद्ध करने हेतु क्रियाशील था, वहीं ब्रह्मदत्त गांधी का उत्तर उसे नीरस-निष्प्रकाश

लगा। उन्होंने कहा, 'रहस्य जानना चाहता हूं कि प्रातःकाल को अंधियारी रातों से क्यों गुजरना पड़ता है। भास्कर के प्रकट होने में विलम्ब क्यों हो रहा है, जानती हो तुम ?'

'जानती हूं। पर विलम्ब कहां हो रहा है ? प्रातःकाल के नियत समय पर ही भास्कर प्रकट होगा। अभी तो एक प्रहर बाकी है।' कामज्योत्स्ना ने युक्तियुक्त उत्तर दे डाला तो ब्रह्मदत्त गांधी ने दाम्पत्य जीवन की वेदना को स्वभोक्ता पत्नी की सहानुभूति के लिये छोड़ दिया था। वह बोला, 'ठीक कहती हो तुम। पर देखो, संसारी माया-मोह का यह कैसा बंधन है जिससे मुक्ति नहीं मिल पा रही, तभी तो प्रातःकाल के भास्कर की राह देखते-देखते मैं थक गया हूं। मैं चाहता हूं कामना हमारे जीवन की अंधियारी रातें समाप्त हों।'

'हमारे जीवन में कहां अन्धकार है ? व्यर्थ में चिंतित न होइये। देखो, रात भी आती है तो सुहावनी सुबह के लिये। प्रकृति के नियम अपरिवर्तित है, शाश्वत हैं, पर प्रकृति ने जो क्रूर मजाक कर अनहोनी को आप पर लादा है उससे विरक्ति मिलना अब संभव नहीं है। आप पत्नी काम-कर्म में मुक्त है। मुझे आपसे कोई शिकायत नहीं है।'

पति को दोषमुक्त ठहरा अर्धमिष्टधर्मिणी अपने स्वच्छन्द धर्माधर्म पर आवरण डाल रही थी। क्या इसे ब्रह्मदत्त गांधी का दार्शनिक कौशल नहीं समझ सकता था...? परन्तु समझ को समझ से परे कर अशक्ति मानव शान्त रहा और सजी-संवरी अनिवार्यता को उसने अपने लिये विनाशित मान लिया। का-पुरुष का चरित्र जीना कितना दुष्कर था सो वह बोला, 'समृद्ध को भला निर्धन से क्या शिकायत होगी ? शिकायत का स्वर तो दुर्बल के लिये ही निश्चित है। जीवन ने मुझे जिस लाचारी पर लाकर छोड़ दिया है, लाख समझाने पर भी मन की वेदना शान्त नहीं हो पाती। अस्त-हिज जरूर हूं मैं, पर मुझे का-पुरुष म [illegible]

असाहिज पति के स्वर में शिकायत [illegible] कामज्योत्स्ना
जानती थी कि उनके पति को क्या [illegible] इच्छा [illegible]
और महत्वाकांक्षाओं को [illegible] निर्बल नहीं
होना चाहती थी [illegible]

कि वह ब्रह्मदत्त गांधी की ढलती अपाहिज निर्बल-निस्तेज देह पर अपनी सुडौल-रमनीय काया के सुघड़ ढांचे को निढाल कर दे।

वह स्वच्छता-पूर्णता में प्यार करती थी; वह सुन्दरता-सौम्यता की रसिक थी; वह पुरुष के पौरुष को चाहती थी; वह अपने राजनैतिक जीवन को शिखर तक पहुंचाने वाले हाथों को स्वीकृत करती थी और वह चाहती थी—पूर्ण पुरुष के रूप में सर्वश्र काम योगी शिव को। जिसे ब्रह्मदत्त गांधी लाख चाह लेने पर भी पूर्ण नहीं कर सकता था। सो वह राजनीति में रमती रही, महत्वाकांक्षाओं के बल पर आगे बढ़ती रही और वैभव को पाकर उसने त्वरित प्रेम के बदलते हुए आयामों में स्थिरता की काम-ज्योति को प्रज्वलित कर ही लिया था। तब भला, अपाहिज-लाचार पति का सामीप्य उसे सुखकर कैसे लग सकता है? वह एक कदम दाहिने बढ़ आई फिर बोली—

'गांधीजी, का-पुरुष का अर्थ नपुंसक होने से मत लगाइये। मैं इतना जानती हूं, आप जो हैं जैसे भी हैं मेरे पति हैं, चक्र के पिता हैं। आप कहा करते थे कि प्यार तन से नहीं मन से किया जाता है। अतस का तो आज भी वही हाल है गांधीजी, जो कभी आपकी विकलांग सोसायटी के दफ्तर में हुआ करता था। तब आप मुझे भोगा करते थे और अंतःकरण की निर्मलता की दुहाई देते थे। क्या भूल गये आप?' मंत्री महोदया अपने पति के अन्दर छिपे हुए पुरुष की खोखली आदर्शता को सम्मुख ले आयी और स्वयं पति अपनी भार्या की ओर ताकता रहा। फिर उत्तर दिया उसने, 'नहीं भूला हूं कामना, मन की निर्मलता तन की सुन्दरता से ज्यादा वजनी है पर दोनों के ऐक्य से तन-मन में जो निखार आता है, उसकी तुलना नहीं की जा सकती। मेरा स्पष्ट मानना है कि तुम मेरे जीवन में मेरी भूलों से अकस्मात आयी और अब विष-कन्या के रूप में धीमा जहर बनकर इस जिंदगी को तिल-तिल खत्म देना चाहती हो।'

'अच्छा किया गांधीजी आपने। मन की बातें होंठों तक तो आयीं। दोष नहीं देती आपको क्योंकि आप अपाहिज पुरुष हैं। अपाहिज न होते तो भी···! पुरुष नारी को कहां समझ पाता है? नारी के बदन का उन्माद पुरुष की ऊर्जा को नहीं मिले तो वह उसे प्यार नहीं नफरत करने लगता है।

सच, मन के प्यार का कचूमर तन की पीड़ा के सामने निकल जाता है। क्या कालयोग, मैं आपके लिये विष-कन्या कैसे बनी ? मैं तो आपकी चहेती थी न ?'

प्रातःकाल का सुखद वातावरण पति-पत्नी के विवादोन्मुख संवादों के कारण कड़वाहट में बदल गया था। लगा, दिलों का ज्योतिबिम्ब आग लग जाने की सम्भावना को नकार रहा था पर वह तो जेहन में कब की लग चुकी थी। जीवन के विभिन्न कोणों में फैली हुई रिक्तता को पाटने की असफल कोशिश ब्रह्मदत्त गांधी की दयनीय स्थिति का आकलन कर रही थी।

ब्रह्मदत्त गांधी ने अपनी विवाहिता को नफरत से देखा फिर कामज्योत्स्ना के प्रश्न का उत्तर दे डाला, 'पुरुष के लिये नारी तब जहर बन जाती है जब वह पति-कर्म से च्युत होकर औरों की बाहों में क्रीड़ा करती है और अपने वैवाहिक पुरुष को चौखट का कुत्ता समझती है।'

क्या कह डाला ब्रह्मदत्त गांधी ने ? उसकी आंखें लाल अंगार हो गयीं। और कामज्योत्स्ना ! ब्रह्मदत्त गांधी के उत्तेजित रूप से सहम गयी। फिर वह स्वयं नफरत से भर आयी थी। पति की अनिवार्यता उसके लिये शून्य थी पर राजनैतिक कुशलता उसमें कूट-कूटकर समायी हुई थी सो उसने पति का विरोध नहीं किया और ना ही कटु जवाब देकर बात को आगे बढ़ने दिया।

कामज्योत्स्ना जानती थी कि सच्चाई, सच्चाई है। लेकिन ब्रह्मदत्त गांधी ने यदि उसके विरुद्ध आवाज को अंजाम दिया तो उसका राजनैतिक भविष्य अन्धकारमय हो जायगा। और जनता के समक्ष देवीतुल्य पतिव्रता नारी का रूप विखण्डित होकर विदीर्ण हो जायेगा और राजनैतिक विरोधी विपक्षी पार्टी के नेता सब ले-देकर उसके पीछे पड़ जायेंगे। चरित्र हनन का राजनीति में अणु विस्फोट है और राधारमन पाड्या ! वह तो पहले से ही उसकी व्यक्तिगत जिन्दगी को तबाह कर सार्वजनिक बनाने पर तुला हुआ है। सारी परिस्थितियां मन्त्री महोदया के मस्तिष्क में घूम आयीं अतः वह शान्त रही और सहज होकर बोली, 'गांधीजी, वहम का इलाज तो हकीम लुकमान के पास भी नहीं था। और फिर शंका तो इंसान को घुन की तरह

धीरे-धीरे खाकर खोखला बना देती है। क्या आप चाहेंगे, मैं राजानीति से दूर हट जाऊं?'

—'राजनीति से दूर हटो या न हटो, मेरे जीवन से दूर हट जाओ या फिर मुझे सचमुच हलाहल से भरा प्याला थमा दो।'

ब्रह्मदत्त गांधी ने अपने मन के कसैलेपन को बाहर बिखेर दिया और व्हील चेयर को आगे बढ़ा दिया था। नफरत का सैलाव उफनकर बह गया था। कामज्योत्सना उस व्हील चेयर के चलते हुए पहियों को टुकर-टुकर देख रही थी जिस पर उसका अपाहिज पति ढोया हुआ था।

मन्त्री महोदया की काया में रमता हुआ सम्पूर्ण काम कर्मशून्य हो गया और उभर आयी वेदना, कटुता व नफरत की एक ऐसी रेखा जो बार-बार उसके अंत:करण को कचोटने में लगी थी। उसने क्यों ब्रह्मदत्त गाधी से शादी कर ली?

कुछ देर वह पूर्व की ओर निहारती रही थी फिर कार गैरिज की ओर बढ़कर कार निकाल पोर्च में खड़ी कर, वह सोचने लगी थी। घड़ी देखी उसने, प्रातः के पांच बजकर सत्रह मिनट हुए थे। अन्तःकरण की वेदना ने मस्तिष्क मे गृहयुद्ध की स्थिति खड़ी कर दी थी पर उसने खोपडी-तंत्र को हिलाकर गृहयुद्ध की भीषणता को टाल देना चाहा। कार में बैठ उसने यंत्र प्रक्रिया प्रारम्भ की फिर कार को ड्राइव करती हुई सूनी सडकों पर निकल पड़ी।

मस्तिष्क का तनाव मन की बेचैनी को बढ़ा रहा था। वह तय नही कर पा रही थी कि आखिर उसे अब जाना कहां है? कार भागी जा रही थी। उसे लगा, जीवन एक भूल भुलैया है कभी गली मिल जाती है और कभी रास्ता भटक जाता है। देखते ही देखते वह किशोरी से औरत बन गयी और शादी का जामा पहन उसने राजनैतिक जीवन में उतरकर अपना स्थान बना लिया था।

पर अब, जबकि उसका औरतपन जागकर हिलोरे खा रहा है—उसे अपने धरातल की दलदल का आभास हो गया है। क्या राजनीति के मजबूत [illegible] पर कदम होने पर भी उसके व्यक्तिगत जीवन का धरातल दल- [illegible] युक्त है, और वह स्वयं उसमें धंसती चली जा रही है। विचारों की

शृंखला का चलना और टूट जाना लौकिक जीवन की सार्थकता है तभी तो कामज्योत्सना जीवन के विविध आयामों को जीवन्त करती हुई अपनी नैया को खे रही थी।

कार की गति उसने धीमी की फिर ब्रेक पर पाँव का दबाव बढ़ा दिया। कार चरमराकर रुक गयी। अरे वह कहाँ पहुँच गयी, वैभव की ओर आने का मानस तो वह कब की छोड़ चुकी थी परन्तु यह तो वैभव के घर की गली का नुक्कड़ ही था। वह उतरी, आश्वस्त हुई और फिर वैभव से मिल लेने का साहस बटोरती रही और कदम-दर-कदम चहेते पुरुष की दहलीज की ओर स्वत. ही उसके कदम बढ़ते गये।

वक्त की चाहत ने कामज्योत्सना के जीवन का रंग ही बदल दिया। वक्त उदार हुआ तो आसमान पर चढ़ा दिया और बदल गया निष्ठुर हो गया, तो दहशतों में बाँधकर गर्त में धमाता चला गया। यही वक्त की परिधि है जिसकी परिक्रमा पर जीवन घूमता रहता है। पहले वक्त के साथ समझौते होते थे और अब वक्त समझौते में खत्म हो जाता है।

वह भी वक्त था जब वस्तु-विनिमय का प्रचलन था फिर स्वर्ण मुद्रा विनिमय का माध्यम बनी, अब कागजी नोटों का वक्त है तो भला जीवन का दर्शन क्यों नहीं बदलेगा ?

कामज्योत्सना के राजनैतिक शिखर पर जीवन के काम का दर्शन चढ़ गया और वक्त ने उसे स्वीकार कर अंगीकार कर लिया था। तभी तो वह स्वच्छन्द प्रभात के कामातुर एकाकी सामर्थ्य को नकार कर वैभव की दहलीज को पार कर चित्रकार की खटिया पर पसर गयी थी।

वैभव जब दूध लेकर लौटा तब उस लम्बा बिछावन पर लेटा देखा

वैभव सोच रहा था कि कामज्योत्सना से अब किनारा कर लिया जाये। उसे नकार दिया जाये, क्या लेने आयी है अब यह औरत मुझे दो कौड़ी का नौकर समझकर लताड़ दिया था। मैं इसके काम का अन्तिम परिणाम नहीं बनूंगा। इसे यहां से बेइज्जत कर निकाल दूंगा। परन्तु पुरुष की दृष्टि इतनी स्पष्ट कहां होती है? लाख-लाख बार प्रताड़ित होने के बाद भी वह नारी के पीछे भागता रहता है। कंचन-कामिनी की सहमति और आमन्त्रण को भला कौन ठुकरा सकता है? मन-मोहक पत्नी न मिलने पर नफरत तो हम कर सकते हैं परन्तु भोगने के अधिकार को कहां किसने छोड़ा है? नफरत करते हुए भी नारी को भोगते रहना इस संसार की अनिवार्यता है तभी तो गृहस्थी की गाड़ी चलती रहती है और जनन प्रक्रिया अनवरत रूप से समय के साथ आगे बढ़ती रहती है। यही भोग की सार्थकता है।

'मैं फिर आ गयी हूं वैभव। प्रभात का प्रथम प्रहर ब्रह्मदत्त गांधी ने मुझसे बलात् छीन लिया, फिर मैं स्वयं यहां आना भी नहीं चाहती थी परंतु मन के कोने-कोने में तुम्हें बार-बार आत्मसात् कर लेने की इच्छा शक्ति ने मुझे तुम्हारी चौखट पर लाकर छोड़ दिया है।' प्रदेश की महिमाशालिनी मंत्री महोदया कहते हुए खटिया पर उठ बैठी। वह जान गयी थी कि वैभव उससे नाराज है जिसे दूर करने का प्रयत्न करते हुए वह फिर बोली, 'मैं जानती हूं तुमने हमारे कहे का बुरा मान लिया पर उस समय मैं केवल रंगमचीय कलाकार थी जिसे अपनी भूमिका को जीवंत कर लेना था। राजनीतिक मच पर अपनी कला को लोगों के लिए दर्शा देना मेरी अनिवार्यता थी। तब ही तो मैंने तुम्हें ड्राइवर की उपस्थिति में डांट दिया था। सच, उस समय मैं प्रदेश की मंत्री थी पर अब जबकि मैं तुम्हारे घर पर तुम्हारी खटिया पर पड़ी हूं तो एक नारी हू, ऐसी नारी जिसे पुरुष का सम्बल चाहिए। जरा प्यार से मेरी तरफ देखो तो वैभव, तुम्हें जीवन के दोहरे मानदण्ड का निष्कर्ष मिल जायेगा।'

आज भी कितनी स्पष्ट थी कामज्योत्सना। उसने जो कुछ कहा अपने जीवन की सच्चाई थी या अनिवार्यता, परन्तु किसी प्रकार की भ्रान्ति नहीं थी। और भ्रान्तियों को पालना उसके स्वभाव के सर्वथा प्रतिकूल था।

परन्तु वैभव का सम्पूर्ण चित्त अपने दृष्टिकोण के साक्ष्य को जुटाता रहा,

वह कभी वैराग्य की सरिता में बह जाता और कभी किनारा कर काम के नैराश्य अर्थ को खोजता रहता। उसके भोग का अर्थ चरम निष्कर्ष पर था जो मंत्री महोदया को प्रताड़ित करने हेतु कर्मशील हो गया था। रोज-ब-रोज के सम्भोग ने उसकी मानसिकता को पशु बना डाला था फिर वह कामज्योत्सना की ओर ताकता रहा और कह देने की सामर्थ्य को जुटाता रहा।

प्रात: का प्रहर सुबह की ओर बढ़ने लगा और कामज्योत्सना ने अपने वस्त्रों को ढीला कर वैभव का हाथ पकड़ लिया, 'आगे बढ़ो वैभव।' परन्तु वैभव ने तत्क्षण ही अपना हाथ खींच डाला। असख्य अणु विस्फोटित हो कामान्ध हो आये और काम-पोर को पीप-मुक्त कर देने की तीव्र आकांक्षा ने वैभव को पीठगर्भ हेतु प्रमत्त कर लिया था। परन्तु वह नहीं समझ पाया कि उसने क्या निर्णय ले लिया है।

वैभव की सम्पूर्ण सूझ-बूझ नारी की निन्दनीय नियति को प्रताड़ित हेतु तीव्र हो आयी थी। नारी की निर्लज्ज-निकृष्ट देह का मुग्ध अभीष्ट होते हुए भी ऐसे कोण से जुड़ा था जिससे आहिस्ता-आहिस्ता वैभव को लगता कि अन्दर नर्क पल रहा है और बदन से अदृश्य झरते हुए काम-कदन में उसका जीवन बौना हो गया है तथा वह अपने ही अस्तित्व के विरुद्ध कार्य करता जा रहा है। कामज्योत्सना के बदन की विद्युत-चुम्बकीय हाहाकार ने वैभव पर जब विद्युत्पात कर दुबारा खींच ही लिया, तो पौरुष का उन्माद विखण्डित होकर वैभव को नर पिशाच बना गया और वह काम की हेय रचना में कामातुर नरपशु हो आया था।

देह पर देह का गिरना इतना तेज था कि भोगी की भोग-सम्भोग-नर्तन नरक-कुण्ड में उलझ आयी और काम-विलास की इच्छा सिहर गयी। कामान्ध नारी विकृत काम कर में कराह-कराह उठी, 'पागल हो गये हो क्या ? छोड़ो मुझे।'

'नहीं मंत्री महोदया, आज मुझे सम्पूर्ण चित्र बना लेने दो।' वैभव की आंखों का रंग रक्तिम हो आया और पुतलियों का रंग शोलों-सा प्रज्वलित था। वहीं मस्तिष्क का ज्वर तन के ताप से अधिक तीव्र था।

'कैसा चित्र ? पहले हटो वैभव।' विक्षिप्त हो आये काम की विकृति

महोदया का ?

कैसा था अनैतिक ससर्ग ? कैसी थी भावनाओं की घिनौनी हरकतें ? क्या था वह सब कुछ जो घट चुका था। कितना हेय दृष्टिकोण था ? कितनी कुत्सित पीड़ा थी नारी में और कैसी कामान्ध-पशुता आ गयी थी पुरुष के पौरुष में ? वह सभोग में आनन्दित होना चाहती थी और उसने बलात-श्रम कर दिया था। वह काम को भोगना चाहती थी और उसने काम के भोग को ही भोग डाला था।

सभोग को समाधि समझने वाली कामज्योत्सना विकृत-काम के नर्क की पीड़ा से सिहर उठी थी। कहां था वह सब-कुछ जो उसके भोग सभोग की चरम-मीमांसा थी ? वहां रह गयी थी—पीड़ा, आपदा, आत्मग्लानि, घृणा और कुपित हेय दृष्टिकोण का साक्षात्। वह स्वयं घृणित थी परन्तु उच्च स्थिति ने उसे क्रोधित कर आत्मघात के कगार पर खड़ा कर दिया था।

कार की गति तेज थी और कामज्योत्सना का मस्तिष्क उच्चताप में क्रियाशून्य होता जा रहा था। वह त्याज्य आचरण से क्लान्त हो क्रोधाग्नि में भटकने लगी थी और कुराहमा को कोसकर स्वयं आत्मग्लानि से कंपित हो रही थी या काम की विकृत यातनाएं लिये थरथरा रही थी—देह पर मन की, आत्मा पर सस्कारों की तथा अस्तित्व पर अतहीन पीड़ा। कहां सोचा था उसने कि काम का अर्थ इतना निन्दनीय, हेय, विकृत होगा और क्षणिक भी।

नियति की विडम्बना नियत पर खरी थी, तभी तो वैभव ने काम के अर्थ को पगु कर नारी को अपनी ही नजरों से गिरा दिया था।

सूर्य की प्रथम किरण ने गतिशील कार के शीशे पर दस्तक दी, तब कामज्योत्सना ने अपने चेहरे पर उभर आयी पसीने की बून्दों को साफ किया, फिर कार की गति बढ़ाते हुए उसकी घिग्घी बंध आयी। उसका सम्पूर्ण अग-अग असहनीय पीड़ा से द्रवित था। और उसका चित्त क्षतविक्षिप्त आत्म-ग्लानि से निन्दनीय। उसे ऐसा लग रहा था, वह निरी अबला है, घृणित है। सब ओर से उसे झुठलाया, ठुकराया जा रहा है। वस्तुत: पीड़ा, यातना की परिभाषा सन्दर्भ से ही व्याख्यायित होती है और कामज्योत्सना का

सन्दर्भ कितना कलुषित था ?

—क्यों कामज्योत्स्ना, देख लिया न स्वच्छंद-काम क
ही तुम्हें गोद डाला। वस्तुतः कामान्ध बलात्कार से ही प
कितना निन्दनीय, कितना घिनौना ?

कामज्योत्स्ना घर पहुंची तो उसका सम्पूर्ण बदन दर्द
रहा था और मस्तिष्क की क्रियाशीलता उसके वश में नहीं
ऐक्य नफरत से बन्दीत था। वह कार से उतरी और बरामदा
शयनकक्ष की ओर जाने लगी कि व्हील चेयर पर लुढ़क आरे
उसकी दृष्टि केन्द्रित हो आयी। वह मुड़ी और ब्रह्मदत्त गा
चली आयी, कुछ क्षण पति की देह को निहारती रही फिर अ
घटी उसके मन में बजी तो वह आगे बढ़ी और व्हील चेयर पर
पति के वदन को छूकर आंखें मूंद शान्त खड़ी रही थी, ब्रह्मद
शरीर ठण्डा पड चुका था। फिर आंख खुली तो उसका ध्यान
समाचार पत्रों के बीच पड़ी विष-डिबिया पर गया था। ज्यू
डिबिया को उठाना चाहा तो उसकी सम्पूर्ण बची-खुची चेतना
पत्रों के मुखपृष्ठ पर छपे स्वयं मंत्री महोदया के समाचारों से
हो गयी थी। फिर मुख्य समाचार-पत्र को उठाकर कामज्योत्स्ना
और पढ़ते-पढ़ते ही चक्कर खाती हुई अचेत गिर पड़ी थी।

आत्महत्या कर लेने के पूर्व ब्रह्मदत्त गांधी ने उन समाचार
गहराई से पढ़ा था जिनमें उसकी अर्धांगिनी कामज्योत्स्ना के चरि
एवं स्वच्छन्द काम-क्रीडा की रंगरेलियां वैभव के संग लिपटी हुई थीं
स्वयं मंत्री महोदया ! अचेत अवस्था में ही उन समाचार-पत्रों को
टुकड़े-टुकड़े कर डालना चाहती थी। क्योंकि—

—काम ने काम को रौंदकर राजनैतिक आचरण पर भी प्रश्न
लगा दिये थे। समाचार-पत्रों ने अनेक कुदग्रह-कुत्सित प्रश्न किये और
की महत्वाकांक्षाओं के महल को नीव से ही उखाड़ दिया था। जीवन
दर्शन काम से कहीं ज्यादा नैतिक आचरण पर टिका है। यही सत्य है।